उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रयागराज

(MAYO-106)

पतंजलि योग सूत्र

प्रथम खण्ड – पतंजलि योग सूत्र का सामान्य परिचय एवं समाधिपाद

इकाई. 01– पतंजलि योग सूत्र का ऐतिहासिक परिचय

पतंजलि योग सूत्र के चारों अध्यायों का परिचय

आधुनिक युग में पतंजलि योग सूत्र का महत्व, शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक महत्व

इकाई. 02– योग की परिभाषा, चित्त की धारणा, चित्त की वृत्ति, चित्त भूमि

अभ्यास–वैराग्य, योगान्तराय, ईश्वर स्वरूप, चित्त विक्षेप,

इकाई. 03– ईश्वर की अवधारणा और गुण, ईश्वर प्राणिधान की प्रक्रिया

चित्त प्रसाधन, समाधि–सम्प्रज्ञात एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा, सबीज एवं निर्बीज समाधि

द्वितीय खण्ड – साधना पाद

इकाई .04 – क्रिया योग – तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान,

पंच क्लेश– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनेवेश

इकाई .05 – कर्माशय एवं कर्म विपाक की अवधारणा

दृश्यनिरुपण, दृश्टानिरूपणम, प्रकृति पुरुष संयोग

इकाई .06 – अष्टांग योग (बहिरंग साधना) यम, नियम आसन, प्राणायाम प्रत्याहार की अवधारणा

तृतीय खण्ड– विभूति पाद

इकाई. 07 – अष्टांग योग (अंतरण–साधना) धारणा ध्यान, समाधि,

इकाई. 08 – संयम का स्वरूप

इकाई. 09 – योग विभूतियाँ, अष्टसिद्धि अणिमा, महिमा, लधिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व

चतुर्थ खण्ड – कैवल्यपाद

इकाई. 10– सिद्धियों के प्रकार, निर्मल चित्त की अवधारणा, समाधि के माध्यम से प्राप्त सिद्धियों का महत्व

इकाई. 11– धर्म मेघ समाधि, विवेक ख्याति एवं कैवल्य

इकाई. 12 – कर्म, कर्म के प्रकार, कर्मफल सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रयागराज

एम.ए.वाई.ओ.– 106 (MAYO-106)

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह –कुलपति, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति –

डा० मीरा पाल प्रभारी निदेशक	स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा UPRTOU
डॉ. अतुल मिश्रा, असि, प्रोफेसर (सं.)	दर्शन शास्त्र, UPRTOU
श्री अनुराग सोनी, असि, प्रोफेसर	योग, आर.एम.एल.यू., अयोध्या
श्री अमित कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री अनुराग शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री निकेत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
सुश्री जूमी सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	गृह विज्ञान, UPRTOU

लेखक –

श्री अनुराग शुक्ला –	सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक –

डॉ. सुनील कुमार श्रीवास –	सहायक आचार्य (योग) मोनाड विश्वविद्यालय एन.सी.आर. क्षेत्र, हापुड़, उत्तर प्रदेश

परिमापक –

डॉ. मीरा पाल –	प्रभारी निदेशक, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक –

श्री अमित कुमार सिंह –	सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रथम खण्ड परिचय

पतंजलि योग सूत्र का सामान्य परिचय एवं समाधिपाद

इकाई. 01– पतंजलि योग सूत्र का ऐतिहासिक परिचय

पतंजलि योग सूत्र के चारों अध्यायों का परिचय

आधुनिक युग में पतंजलि योग सूत्र का महत्व, शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक महत्व

इकाई. 02– योग की परिभाषा, चित्त की धारणा, चित्त की वृत्ति, चित्त भूमि

अभ्यास–वैराग्य, योगान्तराय, ईश्वर स्वरूप, चित्त विक्षेप,

इकाई. 03– ईश्वर की अवधारणा और गुण, ईश्वर प्राणिधान की प्रक्रिया

चित्त प्रसाधन, समाधि–सम्प्रज्ञात एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा, सबीज एवं निर्बीज समाधि

पतंजलि योग सूत्र का सामान्य परिचय एवं समाधिपाद

इकाई–01

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 पतंजलि योगसूत्र का ऐतिहासिक परिचय

1.3 पतंजलि योगसूत्र के चारों अध्यायों का परिचय

1.3.1 समाधिपाद

1.3.2 साधनपाद

1.3.3 विभूतिपाद

1.3.4 कैवल्यपाद

1.4 आधुनिक युग में पतंजलि योग सूत्र का महत्व, शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक महत्व

1.4.1 पतंजलि योग सूत्र का शारीरिक महत्व

1.4.2 पतंजलि योग सूत्र का मानसिक महत्व

1.4.3 पतंजलि योग सूत्र का सामाजिक महत्व

1.5 सारांश

1.6 संदर्भ ग्रंथ

1.7 संबंधित प्रश्न एवं उत्तर

1.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न –

1.7.3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1.0 प्रस्तावना

योग युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है जुड़ना। वास्तव में योग एक अनुशासन है जो मन, शरीर और स्वासों के सम्बन्ध पर आधारित है और इनको स्थिर करने पर केंद्रित है। समयावधि और यौगिक परंपरा यह तय करती है कि किसे जोड़ा जाए या जोड़ा जाना चाहिए। लेकिन महर्षि पतंजलि के योग में, इस लक्ष्य को अलगाव कहा जाता है– अर्थात् आत्मचेतना और भौतिकता का जो एकाकीकार भावना बना हुआ है उनका पृथक्करण। वस्तुतः योग विश्व को भारतीय मनीषियों द्वारा प्रदत्त एक अमूल्य धरोहर है। जिसके द्वारा समूचा विश्व आज एक सूत्र में बंध गया है। आज विश्व के दो तिहाई से अधिक देश योग को मान्यता प्रदान कर चुके हैं। योग भारत में एक दर्शन के रूप में मान्यता प्राप्त विषय है। योग मानव को मानव से जोड़ता है और उन्हें आपसी बंधुत्व मे बांधता है।

विश्व को वसुधैव–कुटुम्बकम की दिशा इसी योग के द्वारा ही हमारे भारतीय मनीषियों ने दिया। आज पूरा विश्व योग से पूर्णतः परिचित हो चुका है। लगभग 1,700 वर्ष पहले महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पतंजलि योगसूत्र को योग के अभ्यास और दर्शन पर मुख्य आधिकारिक ग्रंथों में से एक माना जाता है। योगसूत्र योग के आठ अंगों की रूपरेखा बताता हैं, जो हमें यह सिखाता हैं कि, कोई व्यक्ति यौगिक जीवन कैसे जी सकता है। यह नियमित, समर्पित अभ्यास के परिणामों का भी वर्णन करता है। फिर भी इनमें से किसी से भी पहले, योगसूत्र योग के लक्ष्य को परिभाषित करने से शुरू होता है और बाद में यह वर्णन करता है कि कोई उस लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकता हैं।

वर्तमान में हमारे देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रयास को हम नहीं भूल सकते। उनके प्रयासों के कारण ही इस भारतीय विधा को विश्व मे विशेष मान्यता प्राप्त हुआ। जिसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा योग को पूर्ण बहुमत से मान्यता मिली और भारत का गौरव मान बढ़ा। इस प्रकार इस योग विद्या को प्रतिवर्ष 21 जून को विश्व योग दिवस के रूप में मनाया जाता है।

आज जब हम योग की बात करते है तो कई भारतीय विभूतियों की छवि हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती है। उन्ही महान विभूतियों में से एक महर्षि पतंजलि भी हुए। जिन्होंने उस समय संसार भर में फैल चुके अनेक प्रकार के योग एवं उनके भ्रान्तियों को दूर करने के लिए एवं योग के सही स्वरूप कों सामने लाने के लिए चिंतन मनन किया और तदुपरांत पतंजलि योगसूत्र के रूप में आज हमें योग की प्रसिद्ध कृति पतंजलि योगसूत्र प्राप्त हुई। पतंजलि योगसूत्र में कुल 195 सूत्र हैं। कुछ ग्रंथो मे हमे 196 सूत्र भी देखने को मिलते है।

सूत्र का अर्थ है धागा जो सूत्रों के संबंध का वर्णन करता है वे आपस में जुड़े हुए हैं, या एक धागे की तरह एक साथ बंधे हुए हैं। योग सूत्र के भीतर 195 सूत्र हैं, छोटे–छोटे अंश जो पाठक को चार अध्यायों, या पदों के माध्यम से मार्गदर्शन करते हैं समाधिपाद, योग अभ्यास के परिणामों का वर्णन

करता हैं। साधनापाद, स्वयं अनुशासन का वर्णन करता है, विभूतिपाद, अभ्यास के कुछ अति–सामान्य प्रभावों का वर्णन करता है और कैवल्यपाद, अहंकार की मुक्ति की प्रक्रिया का वर्णन करता है। योगसूत्र योगियों को योग के केन्द्रीय अर्थ की खोज में मदद करने के लिए गहराई और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना है। इन योग सूत्रों ने बाद में योग विकासों के लिए नींव के रूप में काम किया। परिणामस्वरूप, यह उस समय के योग का कोई निर्णायक सैद्धांतिक विवरण नहीं है, बल्कि योग अभ्यास का प्रतिबिंब है योग का एक मैनुअल जैसा है। उस समय किस तरह योगियों द्वारा योग का अनुभव और अभ्यास किया गया था।

इस इकाई में आप विशेष रूप से निम्न तीन प्रकार के विषय का अध्ययन करेंगे –

- 'पतंजलि योगसूत्र' का परिचय
- 'पतंजलि योगसूत्र' के चार पादों का परिचय
- 'पतंजलि योगसूत्र' का वर्तमान परिवेश में महत्व
- पतंजलि योगसूत्र का योग के संदर्भ में महत्व
- पतंजलि योगसूत्र का साधक के जीवन में महत्व

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

(महा उपनिषद् 4/71)

यह मेरा है, वह पराया है, ऐसे छोटें विचार के व्यक्ति करते हैं,
उच्च चरित्र वाले लोग समस्त संसार को ही परिवार मानते हैं।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- योगसूत्र की ऐतिहासिकता को बता सकेंगें।
- पतंजलि योग सूत्र के प्रथमपाद को समझ सकेंगे।
- पतंजलि योग सूत्र के विषय वस्तु को समझ सकेंगे।

- योगसूत्र की वर्तमान में आवश्यकता को जान सकेंगे।
- योगसूत्र में वर्णित योग के विभिन्न आयामों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.2. पतंजलि योग सूत्र का ऐतिहासिक परिचय

पतंजलि योगसूत्र महर्षि पतंजलि कृत एक यौगिक ग्रंथ है। जिसमे योग के विभिन्न आयामों को एक क्रमबद्ध सूत्र रूप में व्यवस्थित किया गया है। सूत्र रूप से तात्पर्य है कि किसी भी विषय को बहुत ही संक्षिप्त रूप में लिख देना। अगर योग ग्रंथों की ऐतिहासिकता पर दृष्टिपात किया जायें तो पतंजलि योगसूत्र योग पर प्रथम सुव्यवस्थित ग्रंथ के रूप में सर्वसम्मत से मान्यता प्राप्त करता है। इसका काल लगभग 200 वर्ष ई० पूर्व. माना जाता है। योग परंपरा में पतंजलि योगसूत्र को भारतीय दर्शन में योग के प्रमुख एवं प्राचीन दर्शन के रूप में जाना जाता है। योगसूत्र के प्रणेता और योग को विश्व के पटल पर लाने का श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है। उन्होंने योग के साथ–साथ अन्य कई विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना की हैं। उन्होंने योग के अतिरिक्त, आयुर्वेद एवं अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखा है।

हम कह सकते है कि ऐतिहासिकता की दृष्टि से पतंजलि योग सूत्र योग पर आधारित एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है। उस प्राचीन समय से चला आ रहा योग, आज वर्तमान में इतना प्रासंगिक हो गया है कि विश्व के अनेक देशों में आज योग पर विशेष रूप से प्रशिक्षण एवं पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। यही नहीं कई देशों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में योग को अनिवार्य कर दिया गया है। साथ ही साथ बहुत से प्रतिष्ठित संस्थानों में योग पर शोध का भी कार्य किया जा रहा है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पतंजलि योगसूत्र पर भी कई विश्वविद्यालयों में शोध कार्य विशेष रुप से किया जा रहा है। इस प्रकार यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि, वर्तमान में पतंजलि योगसूत्र योग पर आधारित सबसे प्रमाणिक एवं विश्वसनीय ग्रंथों में शामिल है।

1.3 पतंजलि योगसूत्र के चारों अध्यायों का परिचय

पतंजलि योगसूत्र चार (अध्यायों) पादों में विभक्त है। पतंजलि योगसूत्र में कुल 195 सूत्र पाए जाते हैं। महर्षि ने संपूर्ण पतंजलि योगसूत्र को चार पादों में क्रमशः समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद के अंतर्गत विभक्त किया है। पहले पाद समाधिपाद में कुल 51 सूत्र, दूसरे पाद साधनपाद में 55 सूत्र, तीसरे पाद विभूतिपाद में भी 55 सूत्र तथा चौथे पाद कैवल्यपाद में कुल 34 सूत्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि, महर्षि ने पहले पाद में समाधि का वर्णन कर साधकों को समाधि के प्रति जिज्ञासा

उत्पन्न करने का प्रयत्न किया हैं जिससे साधक को समाधि के प्रति भ्रांतियां दूर हो सके और साधक, योग के पथ में अग्रसर होकर योग के अंतिम अवस्था समाधि तक की अवस्था को प्राप्त होकर कैवल्य तक की यात्रा को पूर्ण कर सके। दूसरे पाद में इस समाधि को प्राप्त करने के लिए साधनों का वर्णन महर्षि ने किया है इन साधनों पर चलकर साधक को मार्ग में अनेक विभूतियों की प्राप्ति हो जाती है और साधक, जब इन विभूतियों से बिना विचलित होते हुए योग मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ता रहता है तो मानव जीवन का परम पुरुषार्थ कैवल्य तक की अवस्था को भी प्राप्त कर लेता है।

अब हम चारों अध्यायों पर दृष्टिपात करते है–

1.3.1 समाधिपाद–

पतंजलि योगसूत्र का पहला पाद समाधिपाद के रूप में जाना जाता है जिसमें कुल 51 सूत्र हैं। इस पाद में महर्षि ने योग की परिभाषा, वृत्तियों का स्वरूप, वृतियों को शान्त करने का उपाय, वैराग्य का स्वरूप, संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि का वर्णन, योग सिद्धि की विधि, साधकों के प्रकार, ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर की विशेषता, अन्तरायो (विघ्नों), इन अन्तरायो (विघ्नों) को शान्त करने का उपाय, चित्त प्रसाद की प्राप्ति का वर्णन, चित्त को स्थिर करने का उपाय, समाधियों के प्रकार, निर्बीज समाधि आदि विषयों का वर्णन किया है। इस प्रकार अंत में निर्बीज समाधि का वर्णन कर इस पाद को विराम देते हैं।

1.3.2 साधनपाद–

पतंजलि योगसूत्र का द्वितीय पाद साधनपाद के रूप में जाना जाता है। प्रथम पाद में महर्षि ने एक साधक को चित्त इसके विभिन्न प्रकार, अभ्यास एवं वैराग्य, संप्रज्ञात समाधि, असंप्रज्ञात समाधि, ईश्वर एवं उनके स्वरूप, समाधि विशेष एवं सूची तत्वों को बहुत ही विस्तृत रूप से समझाया है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्त को शान्त करना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन एवं विशेषता बताते हुयें समाधि तक की यात्रा का वर्णन किया। इस द्वितीय पाद में महर्षि ने समाधि तक की यात्रा को प्राप्त करने हेतु उपयोग में आने वाले साधनों का वर्णन किया है, वस्तुतः इस पाद में साधन विधि को बताया हैं संभवत इसी कारण इस पाद का नाम साधनपाद उन्होंने दिया है।

महर्षि पतंजलि ने द्वितीय पाद अष्टांग योग का यम से लेकर प्रत्याहार तक का वर्णन कियाा है। यह अष्टांग योग वर्तमान समय में सबसे अधिक प्रासंगिक हैं। वर्तमान में अधिकांश योगाभ्यासी इसी अष्टांग योग को ही पालन करने को प्रयासरत दिखलाई पड़ते हैं। इस पाद में विशेष रूप से क्रिया योग, क्लेशों का वर्णन, कर्मों का वर्णन, विवेकख्याति का वर्णन, अष्टांग योग के प्रथम पांच अंगों का

वर्णन करते हुयें अन्त में प्रत्याहार का विवरण करते हुयें इस द्वितीय पाद को कुल 55 सूत्रों में पूर्णता देते हैं। महार्ष ने अष्टांग योग के माध्यम से ही यमों एवं नियमों आदि का वर्णन किया साथ ही उनकी विशेषताओ को भी सूत्र रूप में व्यवस्थित किया है।

1.3.3 विभूतिपाद–

पतंजलि योगसूत्र के तृतीय पाद को विभूतिपाद के नाम से जाना जाता है। जैसा कि विभूति के नाम से ही इसका अर्थ स्पष्ट हो रहा है कि इस पाद में विभूतियों का विवरण किया गया हैं। विभूतिपाद में महर्षि ने अनेक प्रकार के विभूतियों का वर्णन किया है। इन विभूतियों को योग साधना के मार्ग में विघ्न माना जाता है। साधक को उसकी साधना के फलस्वरुप अनेक विभूतियों की प्राप्ति होती है। इस पाद में अष्टांग योग के अंतिम तीन अंगों धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन प्राप्त होता है। अष्टांग योग के प्रथम पांच अंगों को बहिरंग तथा अंतिम तीन अंगों को अंतरंग साधन कहा गया है। किन्तु समाधि के निर्बीज अवस्था के लिए इन सभी आठ अंगों को बहिरंग माना जाता है। आगे बढ़ने पर धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन प्राप्त होता है और फिर तीनों को ही मिलाकर महर्षि ने संयम के रूप में प्रस्तुत किया है।

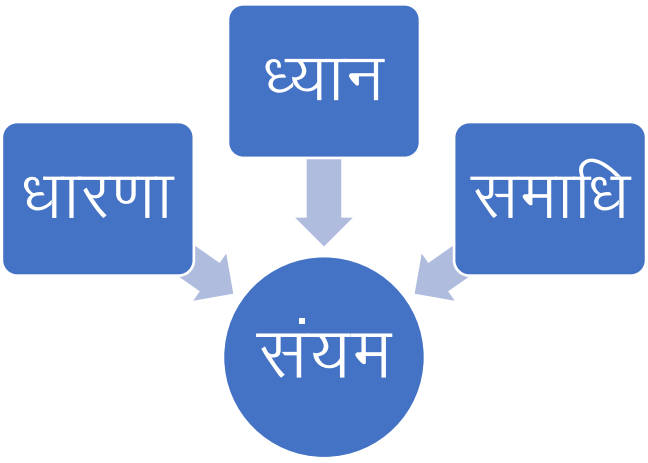

त्रयमेकत्र संयमः।

(प.यो.सूत्र 3/4)

इसी संयम के सधते ही साधक को अनेक विभूतियों की प्राप्ति होने लगती है। रामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीता में भी इन्हीं विभूतियों का जगह–जगह वर्णन मिलता है। गीता में भगवान श्री कृ

ष्ण कहते है कि मैं ही सूर्य में प्रकाश हूँ, मैं ही वृक्षों में पीपल, नदियों मे गंगा, देवताओं मे इन्द्र, ऋषियों में कपिल, पाण्डवो मे धनंजय मैं ही आदि और अंत हूं। इस प्रकार योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में अनेक विभूतियों का वर्णन किया है। विभूतिपाद का प्रथम सूत्र धारणा से शुरू होता है।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

(प.यो.सूत्र 3/1)

इस पाद में मुख्य रूप में धारणा, ध्यान, समाधि की विशेषता, चित्त निरोध, परिणाम त्रय, अनेक विभूतियों, संयम द्वारा अनेक विभूतियों की प्राप्ति का वर्णन जैसे संस्कार पर संयम, चित्त पर संयम, सूर्य में संयम, आदि कर्मों (सोपकर्म और निरुपकर्मों) का वर्णन प्राप्त होता है। विविध प्रकार के बलों पर संयम का वर्णन मिलता है। इन बलों पर संयम से भी विभिन्न प्रकार की विभूतियो की प्राप्ति होती है। आगे इसी पाद में महर्षि ने अनेक प्रकार के अन्य संयमो जैसे – ध्रुव तारा पर संयम, चन्द्रमा पर संयम, नाभि चक्र पर संयम, कुर्मनाड़ी पर संयम, मूर्धा पर संयम, प्रातिभ ज्ञान से प्राप्त विभूतियो का वर्णन करते हुयें अन्त में हृदय में संयम सधने पर चित्त ज्ञान की प्राप्ति का वर्णन महर्षि करते है। स्वार्थ पर संयम सध जाने पर कई सिद्धियां साधक को अकस्मात ही प्राप्त हो जाती है। जिसका वर्णन करना यहां विशेष रूप से जरूरी है। स्वार्थ पर संयम से कुल छः विभूतियां की प्राप्ति हो जाती है जो निम्न है –

1. प्रातिभ
2. श्रावण
3. वेदन
4. आदर्श
5. आस्वाद
6. वार्ता

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते।

(प.यो.सूत्र 3/36)

उदानवायु पर जय, समान वायु पर संयम, कर्ण और आकाश का संबंध, शरीर और आकाश का संबंध, महाविदेहावस्था का वर्णन, भूतजय से प्राप्त होने वाली अष्ट – सिद्धियों की प्राप्ति आदि अनेक विभूतियों का वर्णन महर्षि ने इस पाद में किया है। ये सभी विभूतियाँ साधक को उसके योगपथ पर चलने से मिलने वाली विभूतियाँ है। इसके साथ – साथ साधक में मन सहित इंद्रियों पर विजय, मन के सदृश – गति की योग्यता, शरीर के बिना भी विषयों को अनुभव करने की क्षमता, प्रकृति पर अधिकार आदि योग्यता भी स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

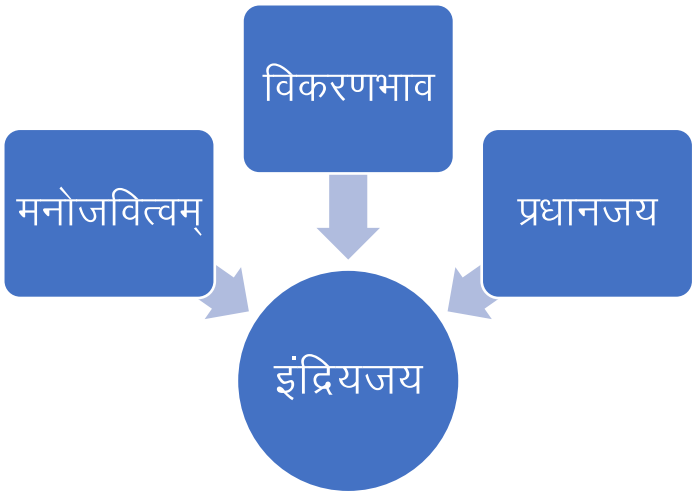

क्षण और क्रम में भी साधक संयम करने में सक्षम हो जाता है। अंत में महर्षि कहते है कि साधक का चित्त और पुरुष इन दोनो की समान रूप से शुद्धि हो जाती है। जिससे दोनों समत्व को प्राप्त कर कैवल्य की अवस्था को प्राप्त कर लेते है।

1.3.4 कैवल्यपाद–

योगदर्शन का चतुर्थ पाद कैवल्यवाद के नाम से जाता जाता है। इस पाद में कुल 34 सूत्र है। कैवल्य से तात्पर्य हैं जो पुरुष अविदित था उसका विदित हो जाना, प्रकृति और पुरुष जो अलग अलग थे उनका एक हो जाना। प्रकाश पर पड़ा आवरण का हट जाना, ज्योतिर्मय परमात्मा का दिग्दर्शन हो जाना। इस प्रकार, कैवल्य, योग मार्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इस कैवल्य अवस्था को साधक, साधना के बल पर क्रमोन्नत विकास करता हुआ प्राप्त कर लेता है। इस पाद में सिद्धी प्राप्ति के माध्यम का वर्णन प्राप्त होता है। ये सिद्धियां दो माध्यम से प्राप्त होती है। एक है जन्म से होनेवाली सिद्धि और दूसरा है औषधि, मंत्र, तप तथा समाधिजन्य सिद्धि।

सिद्धि के माध्यम–

(1) जन्म से

(2) औषधि, मंत्र, तप तथा समाधिजन्य

इस क्रम में जायन्तर – परिणाम का भी वर्णन आता है। जिसका सामान्य तात्पर्य है चित्त की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित हो जाना। महर्षि, इस पाद में स्थान – स्थान पर साधक को कैवव्य प्राप्ति के लिए निर्देश भी देते दिखलाई पड़ते है। उदाहरण के लिए पांचवे सूत्र मे महर्षि कहते हैं।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम्।

(प.यो.सूत्र 4/5)

चित्त में अनेक प्रवृत्तियां या चित्त की वृत्तियां प्रवाहित होती रहती हैं इन्हें स्थिर कैसे करें ? जैसा कि हम जानते हैं की वृत्तियाँ दो प्रकार की होती है–

चित्तवृत्ति के प्रकार –

- क्लिष्ट
- अक्लिष्ट

क्लिष्ट वृत्तियां –

वे वृत्तियां है जो साधक को साधना पथ से दूर ले जाती है।

अक्लिष्ट वृत्तियां –

वे वृत्तियां है जो साधक को साधना पथ की ओर ले जाती हैं।

इस सूत्र में महर्षि यही संदेश दे रहे है कि, साधक को इन्हीं चित्त की प्रवृत्तियों का भेदन कर उन्हें स्थिर कर लक्ष्य की तरफ चित्त को प्रवाहित करने प्रयत्न करना चाहिए।

इसके साथ–साथ महर्षि ने इस पाद में ध्यानजनित चित्त का वर्णन, प्राप्तिवाले योगी के कर्मों का स्वरूप, अन्य सामान्य साधको के कर्मों का स्वरूप, स्मृति और संस्कार का संबंध, भौतिक संसाधनों के प्रति तृष्णा के अन्त का उपाय कैसे हो, आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। संस्कारों के संग्रह हेतु महर्षि ने चार मुख्य कारण बताए हैं।

संस्कारों के संग्रह हेतु चार मुख्य कारण है जो निम्न है–

- हेतु
- फल
- आश्रय
- आलंबन

इन्ही संस्कारों के संग्रह से वासना बलवती होती जाती हैं तथा इन्हीं हेतु, फल, आश्रय, आलंबन के अभाव होने पर संस्कारों का भी अभाव हो जाता है।

महर्षि ने इसी पाद में गुणों के स्वरुप की चर्चा करते हुये उनके शान्त और सम अवस्था होने पर प्राप्त होने वाली स्थिति को भी बताते है। इसी पाद में आगे महर्षि ने चित्त और उसके शान्त होने पर निकलने वाले परिणाम को भी व्यक्त करते हुए कहते है कि,

चित्त के शांत होने पर यह गुणो से अतीत हो जाता है उसके फलस्वरूप साधक अपने आत्मबोध को प्राप्त करता हुआ कैवल्य तक की अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

इस स्थिति को प्राप्त साधक का विवेकज्ञान परम की अवस्था में पहुंच जाता है और उस समय चित्त की अवस्था भी पूर्णतः शान्त, गम्भीर रहती हैं। इस अवस्था को प्राप्त साधक सबीज – समाधि मे अवस्थित रहता है। जिस कारण उस साधक का पूर्व – संस्कारों का ही मिटना शेष रह जाता है। यह संस्कार क्लेशों के समान ही होते हैं। इन्हीं पूर्व संस्कारों के काटने पर जिस समाधि की प्राप्ति होती है – उसे धर्ममेघ समाधि कहते हैं।

विशेषदर्शन से आत्मभाव की निवृति, विवेकज्ञान की प्राप्ति से सबीज समाधि की अवस्था पूर्व संस्कारों को काटने से धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है।

धर्ममेघ समाधि –

साधक जब विवेकज्ञान से भी अपरामिष्ट हो जाता है तब साधक धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति कर लेता है।

धर्ममेघ समाधि की विशेषता वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं इस अवस्था में साधक और साध्य के मध्य दूरी बहुत ही अल्प रह जाती है।

इस पाद के अंत में साधक की स्थिति का वर्णन करते हुये महर्षि कहते है, इस स्थिति को प्राप्त साधक गुणो से अतीत हो जाता है और दृष्टा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर कैवल्य को प्राप्त कर लेता है।

कैवल्य = गुणातीत, दृष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना।

इस प्रकार इस अंतिम पाद में महर्षि साधक की अवस्था का वर्णन करते हुए साधक द्वारा कैवल्य की स्थिति प्राप्त करने तक की साधना का वर्णन किया है। सम्भवतः इस कारण इस पाद का नाम कैवल्य पाद रखा।

1.4 आधुनिक युग में पतंजलि योगसूत्र का महत्व, शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक महत्व

आधुनिक युग मे पंतजलि योगसूत्र का महत्व –

यदि हम आधुनिक युग में पतंजलि योगसूत्र के महत्व के विषय में गहनता से विचार करे तो हम पाते है कि, पतंजलि योग सूत्र में लिखित एक – एक सूत्र जीवन को साधनपथ में निरंतर बढ़ने के लिए मार्गदर्शक की भूमिका में कार्य करता है। योगसूत्र के सूत्रों के द्वारा जीवन का सर्वांगीण विकास संभव है। इन सूत्रों को जीवन में पालन कर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में व्यक्तिगत अनुशासन एवं उपलब्धि को प्राप्त कर सकता है और जब व्यक्ति का विकास होगा तो तो उससे उसका परिवार, समाज और राष्ट्र का विकास होगा। किसी भी देश की समृद्धि वहाँ पर जीवन यापन करने वाले उसके नागरिकों की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक समृद्धि से की जाती है। हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति योगसूत्र में दिए गए अभ्यासो एवं नियमों को जीवन में पालन कर उस मार्ग पर बढ़े तो उसके जीवन में सुखद परिवर्तन संभव है। वह स्वास्थ्य की प्रगति प्राप्त कर सकेंगा।

क्योंकि पतंजलि योगसूत्र, सूत्रों के माध्यम से योग की प्राप्ति का निर्देश देता है इसलिए इसे योग ग्रंथ कहने में कोई अतिशयोक्ति ना होगी और योग की सभी विशेषताएं इस ग्रंथ में स्वयं से सम्मिलित है और जैसा की वर्तमान परिदृश्य में हम समझ सकते हैं आज योग के द्वारा पूरा विश्व समुदाय एक सूत्र में बंध गया है अतः पतंजलि योग सूत्र के द्वारा विश्व कल्याण संभव है।

अब हम पतंजलि योग सूत्र के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक महत्व पर एक–एक करके विचार करेंगे –

1.4.1 पतंजलि योगसूत्र का शारीरिक महत्व –

पतंजलि योगसूत्र मे महर्षि पतंजलि ने योग साधना की क्रियात्मक पक्ष के लिए अष्टांग योग का मार्ग अपनानें उपाय बतलाते है। इस अष्टांग योग का पालन करने से ही कोई भी व्यक्ति अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। यद्यपि अष्टांग योग पूर्णरूपेण पालन कर पाना एक साधक के लिए ही सम्भव है। परन्तु पतंजलि योग सूत्र का अध्ययन कर उसमें बताए हुए दिशानिर्देशों का थोड़ा भी अंश कोई व्यक्ति स्वयं मे समाज मे या देश के विकास मे लाने के लिए प्रयास करता हैं तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति, समाज और देश प्रगति को प्राप्त होगा। महर्षि ने अष्टांग योग में आसन, प्राणायाम, शौच, ब्रहमचर्य, तप, आदि के क्रियात्मक पहलुओं पर चर्चा की है। जिसका सीधा–सीधा संबंध शारीरिक पक्ष से हैं।

इस प्रकार पतंजलि योग सूत्र शारीरिक पक्ष पर भी कार्य करता है। कोई व्यक्ति शाँच, ब्रह्मचर्य, आसन, प्राणायाम का पालन कर शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है।

1.4.2 पतंजलि योगसूत्र का मानसिक महत्व –

पतंजलि योगसूत्र को योगदर्शन के नाम से भी जाना जाता है। योग का शाब्दिक अर्थ है, जुड़ना। योग को अगर समझने का प्रयास करें तो यह पाएंगे कि, योग वस्तुतः शारीरिक एवं मानसिक दोनों पर ही प्रभावी रूप से कार्य करता है। परंतु अध्ययन करने पर हम प्राप्त करते हैं कि योग का मानसिक स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है। योग से व्यक्ति को मानसिक दृढ़ता, संयम, एकाग्रता, धैर्य जैसी अनेक विभूतियां प्राप्त होने लगती है। योग में प्रयत्नशील साधक योग की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहाँ से वह स्वयं ही नहीं बल्कि दूसरों का भी कल्याण करने मे सक्षम हो जाता है। वह साधक उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहां से वह अपने चित्त को एकाग्रता की उच्चतम अवस्था पर पहुच जाता है और अपने चित्त का निरोध कर लेता है। महर्षि इसी को अपने प्रथम पाद समाधिपाद में प्रथम श्लोक में वर्णन करते हुए कहते हैं–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

(प.यो.सत्रू 1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। अब यदि हम विचार करे तो हमें यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होगा कि, चित्त की वृत्ति मानसिक स्थिति से ही संबंधित है। साधक जब अभ्यास और दृढ़तापूर्वक इन चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए प्रयास करता है। तब उसके अंदर उपस्थित विकारों के समूह का धीरे–धीरे समन होने लगता है। मूलतः यह विकार छह प्रकार के होते हैं। जिन्हें हम षडविकारों के नाम से जानते हैं। इन विकारों को नष्ट किए बिना कोई भी साधक योग की उच्चतम अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकता हैं।

अतः पतंजलि योग सूत्र का दूसरा ही सूत्र ही यह सिद्ध कर देता है कि, योग मार्ग पर चलकर तथा पतंजलि योगदर्शन को भली–भाँति समझकर यदि कोई व्यक्ति उस शास्त्रोक्त विधि पर लग भर जाए तो वह स्वयं के लिए ही नहीं बल्कि अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए एक संपत्ति हो जाता है।

1.4.3 पतंजलि योगसूत्र का सामाजिक महत्व –

जब हम पतंजलि योगसूत्र के सामाजिक महत्व की विवेचना करने का प्रयास करते हैं। उस समय हम पाते हैं कि, पतंजलि योगसूत्र के अध्ययन और उसमे लिखित सूत्रों को आचरण में लाकर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में परिवर्तन ला सकता है। यह परिवर्तन जीवन के सभी स्तरों मे होता हैं। जिससे व्यक्ति के समझने, निर्णय लेने की क्षमता बढ़ जाती है साथ ही उसकी सोच सकारात्मक हो जाती है। हम जानते हैं कि, व्यक्ति किसी भी समाज की अंतिम इकाई होता है। इन्हीं व्यक्तियों के समूह से परिवार, समाज व राष्ट्र का निर्माण होता है।

पतंजलि योग दर्शन के आचरण से किसी व्यक्ति के आचरण में सकारात्मक परिवर्तन आता है। तब यह स्वाभाविक है कि उस व्यक्ति के परिवार मे सकारात्मक परिवर्तन होंगे। परिवार से समाज में और समाज से राष्ट्र में परिवर्तन होगा।

योग के द्वारा चित्त की वृत्तियां बदल जाती हैं और जो व्यक्ति समाज के लिए एक समय हानिकारक था वही योग के पथ पर चलकर समाज के लिए उपयोगी, सुधारक और मार्गदर्शक हो जाता है। अंगुलिमाल, रत्नाकर जैसे अनेकों की वृत्तियां योग के द्वारा ही बदल गई और वे समाज के लिए आदर्श हो गए।

इनके साथ ही नानक, कबीर, तुलसी, गौतम आदि सभी इसी योग विद्या के कारण आज समाज में जाने जाते हैं। योगदर्शन में बताएं गए सूत्रों से हम वैयक्तिगत विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास को करते हुए, वसुधैव कुटुम्बकम के पथ पर अग्रसर होते विश्व के कल्याण के भागीदार हो सकते हैं।

1.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात हम पतंजलि योगसूत्र के मुख्य विषयों एवं उसकी ऐतिहासिकता को जाननें में सक्षम हो गए हैं। योगदर्शन के चारों पादों के मुख्य–मुख्य विषयों को हमनें

जानने का प्रयास किया। योगसूत्र की शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक महत्व को भी हमनें इस इकाई में समझने का प्रयास किया हैं। इस प्रकार योगदर्शन के मुख्य विषय को समझते हुए हमने योग के प्रति जिज्ञासा जागृत करने का प्रयास किया है।

अब हम आगे के इकाइयों में योगसूत्र के अलग–अलग पादो ढमें वर्णित मुख्य मुख्य विषयों की विवेचना करेंगे।

1.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1. योग दर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी महाराज
2. पातंजलयोगदर्शन – डॉ सुरेश चंद्र श्रीवास्तव
3. पतंजलि योगसूत्र – श्री श्री रविशंकर
4. योग दर्शन – पं श्री राम शर्मा आचार्य
5. योग सूत्र – वाचस्पति मिश्र

1.7 संबन्धित प्रश्न उत्तर

1.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. योगदर्शन से क्या समझते है? इसके ऐतिहासिकता का वर्णन करते हुयें, इसके विकास पर प्रकाश डालिए।
2. योगसूत्र के चारों पादों पर प्रकाश डालिए और उनका एक–दूसरे से क्या सामंजस्य है विवेचना करें?

1.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न –

1. पतंजलि योग सूत्र की विवेचना करें।
2. योगसूत्र के समाधि पाद की विषय वस्तु क्या है?
3. योगसूत्र के सामाजिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. योग द्वारा व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करें।

1.7.3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. पतंजलि योग सूत्र में कितने पाद है?

   (अ) 2 (ब) 3 (स) 4 (द) 5

2. पतंजलि योगसूत्र का प्रथम पाद कौन सा है?

   अ) साधनपाद (ब) समाधिपाद

   (स) विभूतिपाद (द)कैवल्यपाद

3. साधनपाद में कितने सूत्र है?

   (अ) 51 (ब) 55 (स) 52 (द) 34

4. पतंजलि योग सूत्र को किसने सूत्रबद्ध किया?

   (अ) महर्षि पातंञ्जिल (ब) महर्षि कपिल

   (स) महार्षि मनु (द) महार्षि कबंध

5. पतंजलि योगसूत्र में कुल कितने सूत्र है?

   (अ) 196 (ब) 195 (स) 194 (द) 192

6. पतंजलि योगसूत्र का चौथा अध्याय किस नाम से जाना जाता है?

   (अ) कर्मवाद (ख) साधनपाद

   (स) समाधिपाद (द) कैवल्यपाद

7. पतंजलि योगसूत्र का रचना काल माना जाता है?

   (अ) प्रथम सदी ई.पू. (ब) दूसरी सदी ई.पू.

   (स) 5 वीं सदी ई. पू. (द) 2 सदी

8. पतंजलि योगसूत्र का तृतीयपाद किस नाम से जाना जाता है?

   (अ) कैवल्यपाद (ब) विभूतिपाद

   (स) साधनपाद (द) समाधिपाद

9. समाधिपाद में कुल कितने सूत्र है?

(अ) 55 (ब) 51 (स) 34 (द) 56

10. कैवल्यपाद में सूत्रों की कुल संख्या क्या है?

(अ) 55 (ब) 51 (स) 34 (द) 56

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का उत्तर–

1– (स) 2– (ब) 3– (ब) 4– (अ)

5– (ब) 6– (द) 7– (ब) 8– (ब)

9– (ब) 10– (स)

योग की परिभाषा, चित की धारणा, चित की वृत्ति, चित्त की भूमि, अभ्यास– वैराग्य, योगान्तराय, ईश्वर स्वरूप, चित्त विक्षेप

इकाई–02

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 योग की परिभाषा

2.3 चित्त की अवधारणा

2.4 चित्त की वृत्ति

2.5 चित्त की भूमि

2.6 अभ्यास–वैराग्य

2.7 ईश्वर का स्वरूप

2.8 योगान्तराय

2.9 चित्त विक्षेप

2.10 सारांश

2.11 संदर्भग्रंथ

2.12 संबंधित प्रश्न एवं उत्तर

2.1 प्रस्तावना

पतंजलि योगसूत्र आज योग, विषय का एक प्रामाणिक ग्रंथ है। जिसका पूरे विश्व में योग विषय के अध्ययन के साथ–साथ शोध के लिए भी उपयोग किया है। इस इकाई में हम योग की परिभाषा, चित्त की अवधारणा, चित्त की वृतियां, अभ्यास–वैराग्य एवं ईश्वर के स्वरूप को महर्षि पतंजलि कृत पतंजलि योगसूत्र के अनुसार समझेंगे।

महर्षि पतंजलि स्वयं में ईश्वर के स्वरूप माने जाते है। उनके द्वारा रचित पतंजलि योगसूत्र का एक–एक सूत्र अपने आप मे सम्पूर्ण योग के समान है। इन सूत्रो पर गहन विचार करके उनको अपने स्वयं के व्यवहार में लाने एवं समाज को भी इसका लाभ प्राप्त हो सके इसके लिए हमे हमेशा प्रयत्न करना चाहिए। इन सूत्रो को व्यवहार मे लाकर हम अपने जीवन मे अनेक साकारात्मक परिवर्तन प्राप्त कर सकेंगे और जिस क्षेत्र मे हम प्रयत्न करेंगे उस क्षेत्र मे सफल होंगे। वास्तव में यह योगग्रंथ योगपथ मे प्रयासरत साधकों को ध्यान में रखकर ही महर्षि ने सूत्र रूप मे व्यवस्थित किया है। आज योगपथ पर चलकर हम शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य तो प्राप्त करते ही है साथ ही साथ हम आत्मबोध या जिसको कैवल्यपद कहते है उस तरफ भी अग्रेसर रहते हैं।

2.0 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन कर आप योग की परिभाषा को समझ पायेंगे।
- इसके साथ ही साथ चित्त की वृत्तियों, अर्थ, भूमियों के बारे मे जान पायेंगे।
- अभ्यास एवं वैराग्य की को समझ सकेंगे।
- महर्षि द्वारा बताये गये ईश्वर के स्वरूप समझ सकेंगे।
- ईश्वर की विशेषताओं एवं उनके सम्बोधन को जान सकेंगे।
- साथ ही साथ योग के बाधक तत्त्वों को भी समझ सकेगे।

2.2 योग की परिभाषा

योग का शाब्दिक अर्थ है जुड़ना। यह जुड़ना कई अर्थों और विषयों में प्रयोग किया जाता है। जैसे यदि हम गणित शास्त्र की बात करें तो हम पाते है कि दो अंक आपस में योग करके एक नये अंक को प्रदान करते हैं। जब हम रसायन शास्त्र को देखेते है तो हम पाते है कि दो अभिकारक आपस मे जुड़कर एक नये अभिकारक का निर्माण कर देते है। इसी प्रकार जब हम भौतिक क्षेत्र में किसी कर्ता या व्यक्ति की बात करते है तो हम सामान्यतः कहते है कि कर्ता का अपने कर्म से जुड़ जाना ही कर्मयोग है और जब हम आध्यात्म की तरफ देखते है, तो कहा जाता है कि, आत्मा का परमात्मा से मिल जाना ही योग है। इसे ही हम आत्मबोध या आत्मज्ञान की संज्ञा देते है।

जब हम पतंजलि योग सूत्र का अध्ययन करते है तब वहाँ पर महर्षि ने पहले ही पाद के दुसरे सूत्र मे योग को परिभाषित करते हुए लिखा है।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

(प.यो.सूत्र 1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। निरोध का अर्थ होता है रुक जाना, अर्थात् चित्त की वृत्तियाँ जो चलायमान थी। उनका एक जगह टिक जाना। वृतियां ही लगातार बदलती रहती है ये वृत्तियाँ मन की तरंग ही है। यही चित्त में एक के बाद एक नये–नये विचार उत्पन्न कराता रहता है। इन्ही तरंगों का ही निरोध करना है और इसी मे जब साधक सफलता प्राप्त कर लेता है। तो महर्षि पतंजलि के शब्दों में यही योग कहलाता है।

महर्षि ने इस योग को दो भागों में विभाजित किया है। जिसको उन्होंने सम्प्रज्ञात योग एवं असंप्रज्ञात योग के नाम से संबोधित किया है। सम्प्रज्ञात योग की पूर्णता में चित्त की निरोधावस्था की प्राप्ति हो जाती है जिसके फलस्वरूप राजसिक एवं तामसिक गुण पूर्ण रूप से शांत हो जाते हैं।

परन्तु अभी सात्विक गुण शेष रह जाते हैं। इससे हम यह कह सकते है कि चित्त की वृत्तियां सत, रज, तम गुणो के रूप में त्रिगुणात्मक होती है और एक योगी अपने योग मे तभी चरमोत्कर्ष को प्राप्त करेगा। जब वह योग साधना के अभ्यास से इन्हीं गुणों को त्रिगुणातीत तक की स्थिति में ले जाने मे सफल हो जाता है।

दूसरा योग जिसको महर्षि ने बतलाया है वह है, असंप्रज्ञात योग। योग की इस अवस्था को सम्प्रज्ञात योग से श्रेष्ठ माना गया है। योग की इस अवस्था में पहुंचा हुआ साधक तीनों गुणों पर विजय प्राप्त करने मे सफल हो जाता है इसलिए वह त्रिगुणातीत कहलाता है। अर्थात वह साधक सात्विक,

राजासिक एवं तामसिक तीनों गुणों को शांत कर लेता है और पूर्णरूपेण चित्त की वृत्तियाँ भी निरोधावस्था मे लाकर पूर्ण योग को प्राप्त कर लेता है।

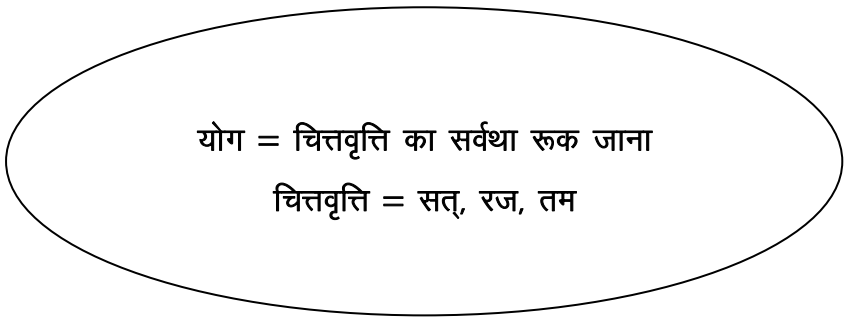

इन्हीं गुणों को अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा शांत कर चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है।

2.3 चित्त की अवधारणा –

चित्त का सामान्य तात्पर्य मन से लगाया जाता है। चित्त की उत्पत्ति चित्ति संज्ञाने धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञानानुभूति का साधन अर्थात चित्त एक ऐसा साधन है जिससे हम विषयो की अनुभूति प्राप्त करते है। जब हम पतंजलि योगसूत्र मे वर्णित चित्त को समझने का प्रयास करते है। तो हम पाते है महर्षि ने मन, बुद्धि, अहंकार तीनों को सम्मिलित रूप मे चित्त की संज्ञा दी है।

भारतीय दर्शन में चित्त को अंतःकरण के अन्तर्गत ही रखा गया है। जैसा की महर्षि ने अंतकरण के अंतर्गत मन, बुद्धि, अहंकार को माना है। ठीक इसी तरह भारतीय दर्शन भी इन्हे ही अंतःकरण के अन्तर्गत मान्यता प्रदान करता है। चित्त मन की ही एक अवस्था है। मन में उठने वाले विचार ही हमारे चित को चलायमान करते हैं। मान लीजिए यदि हमारे मन में खाने का विचार आया तो यह चित्त तुरन्त ही खाने की तरफ आकर्षित होने लग जाता है। यही इसकी चलायमान गति है।

चित्त को कई अर्थो मे प्रयोग किया जाता है कही इसका अर्थ देखना, कही प्रज्ञा, कही चेतना, कही अन्तःकरण आदि आदि अर्थ लगाये जाते है।

चित्त के इतने अर्थों को देखते हुए मन में भ्रम होना स्वाभाविक है कि वस्तुतः चित्त है क्या?

इस संबंध में विश्व प्रसिद्ध योगाचार्य श्री जग्गी वासुदेव जी का मानना है कि, चित्त मन का ही भीतरी आयाम है जो विशुद्ध प्रज्ञा युक्त, निर्मल और चेतना की उच्च अवस्था है। जब हम इस विषय मे और सुक्ष्म विचार करे तो आभास होता है कि मन और चित्त एक–दूसरे के पूरक के रूप मे कार्य करते है। जब हम योग की तरफ चलायमान होते है और योगपथ पर कुछ दूरी तय कर सुक्ष्मता की ओर

बढ़ते है तो हम देखते है, कि चित्त और मन दोनो एक ही है और इन पर ही नियंत्रण करने का निर्देश हमोर योग ग्रंथों मे जगह–जगह दिया गया है। अर्थात् साधक को अपने चित्त को ही साधना के द्वारा एकाग्रवस्था में लाना होता है और जब साधक इस कार्य मे सफल हो जाता है। तब माना जाता है कि साधक योग को प्राप्त हो गया है। महर्षि भी इसी बात को परिभाषित करते हुए कहते है कि चित्त की वृत्तियो का निरोध ही योग है।

योगशास्त्र श्रीमद्भगवदगीता भी कहती है कि, यह मन बहुत वेगवान है। यह वायु की गति से भी तेज चलती है। इसका निरोध करना कठिन है परन्तु अभ्यास के द्वारा इस पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

अतः योग मार्ग में अग्रेसर पथिक को योग की पूर्ति के लिए इस चित्त का निरोध करना आवश्यक होता है।

2.4 चित्त की वृत्ति

हमने अभी तक चित्त एवं चित्त की अवधारणा के विषय मे विस्तारपूर्वक जाना है। अब हम चित्त की वृत्तियों के विषय मे समझने का प्रयास करेंगे। हमने देखा कि, इन चित्त की वृतियों का निरोध ही योग है।

अतः इन वृत्तियों को भली प्रकार जान लेना एक योगाभ्यासी के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

महर्षि जी ने वृत्तियों को पांच तरह से विभक्त एवं दो प्रकारो मे वर्णित करते हुए सूत्र दिया है –

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।

(प.यो.सूत्र 1/5)

अर्थात, यह वृत्तीयां पांच तरह से विभक्त एवं दो प्रकार की होती हैं– क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट।

जब हम योगदर्शन के समाधिपाद के 5 वें सूत्र पर दृष्टिपात करते है तो वहाँ महर्षि जी ने चित्त की वृत्तीयों के विषय में निर्णय दिया है कि, ये वृत्तियां क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार और पांच भागों मे विभक्त है।

अब हम इन वृत्तियों को समझने का प्रयास करेंगे। जैसा कि, हम जानते है कि, वृत्तियां क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट दो भागों में विभक्त है। इसमे क्लिष्ट वृत्ति का प्रवाह क्लेशों की तरफ तथा अक्लिष्ट वृत्ति का प्रवाह क्लेशों से दूर, मुक्ति की तरफ होता है।

2.4.1 वृति के प्रकार

अब हम क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों को अलग – अलग समझने का प्रयास करेंगे –

(क) क्लिष्ट वृत्तियां –

वह वृत्ति जो तमोगुणी है उन्हें क्लिष्ट वृत्ति कहते है। तम गुण के प्रधान होने से रज और सत् गुण गौण रहते है या हम कह सकते हैं कि सत् और रज् गुण कम प्रभावी रहते हैं। इस वृत्ति मे स्थित होने पर हम विवेक का सही उपयोग नहीं कर पाते हैं और अज्ञान की तरफ अग्रेसर होते है। क्लिष्ट वृत्तीयां हमें प्रकृति की तरफ ले जाती हैं इन्हीं को भौतिक वृत्ति, आसुरी संपद, प्रवृत्ति मार्ग, बंधन आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

(ख) अक्लिष्ट वृत्तियां –

वह वृत्ति जिसमें सतगुण का प्रभाव अधिक होता है। वे अक्लिष्ट वृत्तियां कहलाती है। इसमे रज और तम गुण का प्रभाव कम हो जाता है। इस वृत्ति के प्रभावी होने पर साधक विवेक का सही प्रयोग कर सकने में सक्षम हो जाते है और साधना पथ निरंतर आगे बढ़ता जाता है। इसी वृत्ति को निवृत्ति मार्ग, दैवीय संपद, आत्मपथ, मुक्तिपथ आदि अनेक नामो से जाना जाता है।

इस प्रकार महर्षि ने वृत्ति के दो मुख्य प्रकार क्लिष्ट और अक्लिष्ट ही माना है। फिर महर्षि जी ने समझने और समझाने की दृष्टि से इन वृत्तियों को 5 भागो में विभक्त कर दिया है ताकि साधन पथ पर अग्रेसर कोई साधक इनके प्रभावो को आसानी से समझ सके।

पतंजलि योगसूत्र में महर्षि जी ने इन वृत्तियों को सूत्र रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।

(प.यो.सूत्र 1/6)

अर्थात, वृत्ति पाँच भागो मे विभक्त हैं– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति।

- **प्रमाण वृत्ति** – यह वृत्ति वृत्तियों का संचालन करती है।
- **विपर्यय वृत्ति** – मिथ्याज्ञान या अज्ञानता की तरफ चलने वाली वृत्ति को विपर्यय वृत्ति कहते है।
- **विकल्प वृत्ति –** स्वरूप की तरफ चलने वाली वृति को विकल्प वृत्ति है।
- **निद्रा वृत्ति –** कभी – कभी न स्वरूप की तरफ चलने वाली वृत्ति ही रहती है और ना अज्ञानता या मिथ्याज्ञान की तरफ चलने वाली वृत्ति रहती है तो उसे निद्रा वृत्ति कहते हैं। यह संपूर्ण रूप से वृत्तियों की सुप्त अवस्था कहलाती है।
- **स्मृति –** स्मृति संस्कारों को धारण करने का माध्यम है।

अब हम इन वृत्तियों को अलग–अलग समझने का प्रयास करेंगे –

प्रथम वृत्ति प्रमाण है जिसे महर्षि पतंजलि जी ने सूत्र रूप मे वर्णन किया है –

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।

(प.यो.सूत्र 1/7)

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, प्रमाण हैं।

प्रत्यक्ष दो शब्दों प्रति और अक्ष से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है आंखों के सामने होना। तो क्या इतना ही प्रत्यक्ष है? जब हम इसका उत्तर खोजते हैं तो हम पाते हैं कि हमारी ज्ञानेंद्रियो द्वारा शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श भी अनुभव किया जाता है। वह भी प्रत्यक्ष ही होता है।

अनुमान भी प्रमाण के अंतर्गत आता है। बादलों को देखकर हम वर्षा का अनुमान लगा सकते हैं। कहीं धुआं उठता देख कर हम वहां अग्नि होने का अनुमान लगाते हैं। यह भी प्रमाण के अंतर्गत ही आता है।

आगम भी प्रमाण के अंतर्गत आता है। आगम का शाब्दिक अर्थ होता है श्रेष्ठ पुरुषों का दर्शन उनके विचारों को अपने जीवन में उतारना अर्थात आचरण करना और अंत में ज्ञान की प्राप्ति करना।

दूसरी वृत्ति विपर्यय है जिसके लिए महर्षि पतंजलि ने सूत्र दिया है –

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रुपप्रतिष्ठम्।

(प.यो.सूत्र 1/8)

अर्थात, जो वस्तु है ही नहीं उसमें आसक्ति ऐसा मिथ्याज्ञान ही विपर्यय है।

यह वृत्ति पूरी तरह से क्लिष्ट वृत्ति है यह आपको प्रवृत्ति की तरफ ले जाती है अर्थात यह वृत्ति आपको स्वरूप से दूर अर्थात मिथ्याज्ञान की तरफ ले जाती है।

यह क्लिष्ट वृत्ति भी प्रमाण मिलने पर अक्लिष्ट वृत्ति में परिवर्तित हो जाती है। अंगुलिमाल को बुद्ध का दर्शन हुआ तो वो संत हो गए। रत्नाकर को सप्तऋषियों का दर्शन हुआ तो वे महर्षि वाल्मीकि बन गए। अर्थात वृत्ति क्लिष्ट से अक्लिष्ट या अक्लिष्ट से क्लिष्ट अलग–अलग कारणों से परिवर्तित हो जाती है।

तीसरी वृति है विकल्प जिसके लिए महर्षि जी ने सूत्र दिया है–

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।

(प.यो.सूत्र 1/9)

जो ज्ञान शब्द द्वारा प्राप्त हो और वस्तु अर्थात विषय की अनुपस्थिति हो वृत्ति विकल्प वृत्ति कहलाती है।

यह शब्द अनुभव जन्य है और यह वृत्ति अक्लिष्ट है। स्मृति में शब्द का अनुभव तो हो जाता है लेकिन विषय का अभाव बना रहता है। जिसकी प्राप्ति करना है वह अभी प्राप्त नहीं हुआ है। अतः साधक को उसकी प्राप्ति के लिए अभी साधना में लगे रहने की आवश्यकता होती है। एक साधक जब साधना में लगा रहता है। तो दृष्टा रूपी आत्मा जो परमात्मा का अंश है। उस साधक को मुक्ति प्रदान करने के लिए दृश्य का रूपांतरण करने लगता है। इसी दृष्टा और दृश्य का संयोग होने पर साधक को निरंतर पथ प्रदर्शन करने वाले शब्द उत्पन्न होते रहते हैं यही वास्तविक शब्द कहलाते हैं।

चौथी वृत्ति जिसे निद्रा कहते हैं महर्षि जी ने उसके लिए सूत्र निरूपित करते हुए लिखा है–

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।

(प.यो.सूत्र 1/10)

निद्रावृत्ति से तात्पर्य है कि, साधक न तो प्रकृति की ओर उन्मुख है और ना ही परमात्मा की ओर ना तो विपर्यय की ओर उन्मुख है ना ही विकल्प की ओर। वह वास्तव में सुप्तावस्था में है। इसलिए इस वृत्ति को निद्रा वृत्ति की संज्ञा दी गई है।

पांचवी वृत्ति स्मृति है महर्षि ने इसे सूत्र रूप में निरूपित करते हुए कहा है –

स्मृति सम्पूर्ण वृत्तियो की आधार है इसी पर सभी वृत्तियां प्रस्फुटित होती है।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

(प.यो.सूत्र 1/11)

पूर्व में जो भी क्रिया–कलाप साधक द्वारा होते है उनका पुनः प्रकट होना ही स्मृति वृत्ति है।

स्मृति वह आधार है जिस पर जन्म–जन्मांतरों के संस्कार दबे पड़े रहते है और समय–समय पर उभर आते है। वस्तुतः स्मृति और संस्कार एक ही है अतः यह क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों ही हो सकती है।

2.5 चित्तभूमि

चित्त की भूमि पांच प्रकार की है। चित्त की भूमियाँ क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र इन पांच अवस्था वाली होती है। जो अपने आप में गुणों के अनुसार साधक में बदलती रहती है। वस्तुतः चित्त की भुमियाँ इन्ही पांच अवस्थाओं पर ही निर्भर होती है। वैसे तो यह चित्त की भूमियाँ अनंत अवस्थाओं वाली होती हैं। लेकिन महर्षि व्यास जी ने इन्हे पांच अवस्थाओ मे विभक्त किया है।

महर्षि वेदव्यास जी ने इन चित्त भूमियों को सूत्ररूप में वर्णन करते हुये कहा है –

क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्तं एकाग्र निरुद्धमिति चित्तभूमयः।

(व्यासभाष्य योग. द. 1/1)

अब हम इन्हें अलग–अलग समझेंगे–

2.5.1 क्षिप्त

चित्त की यह भूमि संसार के अधिकतर प्राणियों में पाई जाती है। इसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है तथा तम एवं सत् गुण दबे होते है। रजोगुण की प्रधानता से राग–द्वेष आदि प्रधान हो जाते है।

2.5.2 मूंढ

मूंढ अवस्था में चित्त उचित और अनुचित का निर्णय नही कर पाता है। ऐसा चित्त अधिकांशतः किसी न किसी विषय में मोहित रहता है, जिसका यथार्थ से कोई संबंध नहीं होता है। इस अवस्था में तमों गुण की प्रधानता होती है तथा सत् एवं रज् गुण गौण होते है। जिससे काम, क्रोध, मोह आदि बढ़ जाते हैं।

2.5.3 विक्षिप्त

क्षिप्त शब्द में वि शब्द को मिलाने पर विक्षिप्त शब्द बनता है। यहाँ वि से तात्पर्य विशिष्ट है अर्थात् जो क्षिप्त से श्रेष्ठ हो। विक्षिप्त अवस्था में चित्त में एकाग्रता, सत्त्व गुण की वृद्धि, ध्यान आदि गुण पाई जाती है लेकिन यह स्थिति अभी स्थायित्व को प्राप्त नही होती है अर्थात् यह अवस्था बदलती रहती है।

2.5.4 एकाग्र

एकाग्र अवस्था, चित्त भूमि की वह अवस्था होती है। जहाँ पर चित चित्त की चंचलता विरामावस्था मे स्थित हो जाती है। वास्तव में किसी भी साधक की साधना यही सें अपने प्रभाव को प्राप्त करने लगता है। इस अवस्था मे सत्त्व गुण उच्चतम अवस्था मे पहुंच जाता है तथा रज गुण एवं तम गुण गौणावस्था में पहुँच जाता है। साधक का चित्त जिस आधार पर टिकना चाहिए वहां पर टिकने लगता है। चिंतन, विचार, मन, इंद्रियां, कर्मेंद्रिया, ज्ञानेंद्रिया आदि साधक कें नियंत्रण मे आ जाती हैं।

2.5.5 निरुद्ध

चित्तभूमि की वह अवस्था है। जहाँ पर तीनो गुणो का अर्थात सत, रज, एवं तम तीनो ही गुण गौण हो जाते है। ऐसी स्थिति को प्राप्त साधक साक्षात् पुरुष को अर्थात आत्म साक्षात्कार को प्राप्त कर लेता है। वह जीव जो उस परमात्मा का विशुद्व अंश है, उसको विदित कर लेता है। इसी को अपने शास्त्रो मे यथार्थ ज्ञान कीं प्राप्ति कहा गया है। साधक की इंद्रिया मन सहित उसके वश में आ जाती है और वह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारो पर विजय प्राप्त कर लेता है।

2.6 अभ्यास–वैराग्य

चित्त वृत्तियों कों निरोध करने के लिए अभ्यास एवं वैराग्य का पालन किया जाता है। पतंजलि योगसूत्र के प्रथम पाद में ही महर्षि पतंजलि जी ने अभ्यास एवं वैराग्य का वर्णन करते हुये कहते हैं –

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(प.यो.सुत्र 1/12)

अर्थात्, अभ्यास और वैराग्य से चित वृत्तियों का निरोध होता है।

चित्त की वृत्तियों का निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य का पालन करना चाहिए। इन्ही अभ्यास और वैराग्य का पालन करने से एक साधक योग की पराकाष्ठा को प्राप्त करता है।

इसके उपरान्त अगले श्लोक में अभ्यास का वर्णन किया गया है। सूत्र रूप में वर्णन करते हुये महर्षि कहते है –

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

(प.यो.सूत्र 1/13)

अर्थात, चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयास किये जाते है, वह अभ्यास है।

महर्षि जी ने चित्त की वृत्तियों का निरोध और अभ्यास के द्वारा चित्त की स्थिरता दोनों का वर्णन योगसूत्र के बारहवें व तेरहवें सूत्र में किया है। इन दोनों ही सूत्रों का एक साधक को साधना कें आरम्भिक काल से पूर्तिपर्यन्त तक मार्गदर्शक के रूप में निरंतर उपयोग मे लाने की आवश्यकता रहती है। यह अभ्यास व वैराग्य हमे वर्तमान जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने मे भी सहायक है। योगदर्शन के ये दोनों सूत्र हमें जीवन मे किसी भी कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरक का कार्य करते है।

2.7 ईश्वर का स्वरूप

महर्षि पतंजलि जी ने पतंजलि योगसूत्र के प्रथम पाद समाधिपाद में ही ईश्वर के विषय में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। वर्तमान भौतिकता के युग में हम सभीं अधिकांशतः ईश्वर को देखने समझनें व उसे जानने की इच्छा रहती है। कभी–कभी उसके प्रति अविश्वास भी हमारे मन मे आ जाता है। ऐसी स्थिति मे महर्षि पतंजलि जी का यह सूत्र हम सभी के लिए मार्गदर्शक के रूप मे है।

यें जिज्ञासा भी स्वाभाविक ही है। ईश्वर किस कहते है? उनका स्वरूप कैसा है? आदि अनेक प्रश्न हम सभी के मन में उठते रहते है। महर्षि ने बड़ी ही सरलता व सहज भाव से पतंजलि योगसूत्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है। योगदर्शन के चौबिसवें सूत्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुये महर्षि पतंजलि कहते हैं –

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

(प.यो.सूत्र 1/24)

क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इन सब से जो अपरामृष्टः है। अर्थात् इन चारों से जो परे है, वही ईश्वर है, और वह विशेष पुरुष है।

विचार करें तो यह स्पष्ट भी है कि, जो क्लेशों से, कर्मों और उसके द्वारा निर्मित कर्म के बंधनो सें जिसे हम विपाक कहते है, और उनके आशय अर्थात् उन बंधनो में बांधने वाले संस्कारों से जो पूर्णतः निर्लेप है, उससे संबंधित नहीं है, उनसे परें है। इन विशेषताओं वाला है स्पष्ट है वह विशेष ही होगा। यही विशेष महत्व रखने के कारण वह विशेष पुरूष ईश्वर को प्राप्त कर स्वयं मे ईश्वर हो जाता है।

अब हम सभी ईश्वर के लक्षणों को समझ चुके है। उसके स्वरूप को भी समझ चुके हैं। इसके उपरान्त महर्षि ने अगले ही श्लोक में ईश्वर की विशेषता को वर्णित किया है।

2.7.1 ईश्वर की विशेषता

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

(प.यो.सूत्र 1/25)

वह ईश्वर सर्वज्ञता का बीज धारण किये हुये हैं।

महर्षि जी ईश्वर की विशेषता का वर्णन करते हुए कहते हैं। वह ईश्वर सर्वज्ञता का बीज धारण किये है अर्थात, वह सब कुछ सहज जानने वाला है, सब जगह सहज ही उपस्थित रहने वाला है, सब कुछ देखने और समझने वाला है। उसके लिए कुछ भी जानना शेष नही है।

महर्षि अगले श्लोक मे कहते है –

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

(प.यो.सूत्र 1/26)

वह ईश्वर काल से अवच्छेद नही है। जिससे वह पूर्व में जो भी गुरू हुए है उन सबका गुरू है। वह काल से परे अकाल पुरुष है।

महर्षि जी ने यहाँ एक और सूत्र में ईश्वर की विशेषता को ही वर्णित किया है। वह ईश्वर पूर्वेषाम् पूर्व मे आने वाले प्रत्याशियों का गुरू है वह अकालपुरूष है क्योकि वह काल से परे है। कालेनानवच्छेदात्। सृष्टि में अनेक जो गुरू हुये है प्रवाहित गुरूत्व यही है। यही कारण है कि भगवान श्रीकृष्ण को गुरूओ का भी गुरू कहा गया है।

महर्षि जी ने अगले श्लोक मे उस ईश्वर को किस नाम से पुकारे? उसका निर्णय भी स्वयं देते हुए कहते है –

तस्य वाचकः प्रणवः।

(प.यो.सूत्र 1/27)

उस ईश्वर को पुकारने का नाम प्रणव है, अर्थात् ओम् है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान कहते हैं, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म अर्थात् ओम् अक्षय ब्रह्म का परिचायक है। यही ओम् प्रणव है। उस ईश्वर का परिचायक शब्द है यही उस ईश्वर को निर्देशित करने वाला शब्द हैं। इसी ओम् या प्रणव से उस पर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

अब हम योग के विध्नो का अध्ययन करेंगे–

2.8 योगान्तराय

योगान्तराय का शाब्दिक अर्थ है योग के विघ्न अर्थात् रूकावटे। महर्षि ने योगदर्शन के प्रथमपाद में हीं योगान्तरायों को स्पष्ट रूप से वर्णित कर दिया है। प्रथम पाद के तीसवें श्लोक में महर्षि कहते हैं–

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।

(प.यो.सूत्र.1/30)

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्त्व चित्त अन्तराय है।

आइये इन अन्तरायों को समझते हैं –

1. **व्याधि –** व्याधि योगान्तरायों में प्रथम है। व्याधि सें तात्पर्य है शारीरिक रोग या या इंद्रिय जनित रोग जिससे चित्त प्रवाहित हो जाता है और चिंतन छूट जाता है।
2. **स्त्यान –** स्त्यान व्याधि से तात्पर्य है चित्त की अकर्मण्यता। जैसा की नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कर्म न करना। योग को जानतें समझते हुये भी हम उसमें लगते नहीं है। उसको अपनाते नही हैं यही है स्त्यान।
3. **संशय –** संशय से तात्पर्य है संदेह। योग के द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों मे संदेह होना या अपनी शक्ति पर संदेह करना संशय है। जानते हुयें भी हम कहीं न कहीं उसमें विश्वास नही कर पाते है मन में सन्देह रहता है कि यह हो सकेगा या नहीं। यह सन्देह ही संशय है।

4. **प्रमाद** – प्रमाद से तात्पर्य है कि हम योग मार्ग पर चल तो रहे है लेकिन हम पूरी एकाग्रता के साथ योग नहीं कर रहे हैं। योग के साधनों का पालन नहीं कर रहे हैं। योग साधनों के अतिरिक्त अन्य व्यर्थ की बातों साधनों को अपनाना ही प्रमाद है।
5. **आलस्य** – पाँचवा योगान्तराय आलस्य हैं। आलस्य सें हम सभी परिचित है। किसी कार्य को जो करना है लेकिन शरीर और चित्त के भारी होने के कारण हम उस कार्य को न कर उसे टाल देते है यह आलस्य है। कहा भी गया है –

   आलस्य, निद्रा, जम्हाई तीनो काल के भाई।
6. **अविरति** – छठा योग अन्तराय अविरति है। जिसका तात्पर्य है, भोग विलास में उलझना या विषयों की तरफ बढ़ना। जब हम वैराग्य पथ से विचलित होते हैं तब यह अन्तराय प्रभावी होने लगता है।
7. **भ्रान्तिदर्शन** – भ्रान्तिदर्शन किसी विषय के सही पहलुओं को सही न समझ कर जब हम अपने अनुसार उसका वर्णन या जानकारी रखते हैं तो यह भ्रांति दर्शन कहलाता है। किसी विषय को जानते हुये भी उस विषय को जिस रूप में जानना चाहिए। उससे भिन्न या विपरित जानकारी रखना भी भ्रान्तिदर्शन है।
8. **अलब्धभूमिकत्व** – अलब्धभूमिकत्व को महर्षि ने आठवाँ अन्तराय बतलाया है। जिससे तात्पर्य है कि चित्त का एकाग्र न होना या चित्त में विक्षेप होना। साधक साधना करने पर भी योग की अवस्थाओं या भूमिकाओं मे स्थिति को प्राप्त नहीं कर पता है को प्राप्त है।
9. **अनवस्थितत्त्व** – यह नौवाँ अन्तराय है जिसका सामान्य अर्थ है चित्त का एकाग्रवस्था में या समाधि मे न ठहरना। योग की किसी भूमिका में साधक का चित्त स्थित तो है परंतु उस अवस्था में बहुत देर तक ठहरता नहीं है।

इस प्रकार महर्षि ने योग के कुल नौ अन्तरायो का वर्णन पतंजलि योग सूत्र में किया है। जिसको योग के बाधकतत्व या विघ्न भी कहा जाता है।

2.9 चित्तविक्षेप

चित्त की वह अवस्था जिसमें चित्त एकाग्रता को नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार एकाग्रता की कमी ही चित्तविक्षेप कहलाता है। महर्षि ने चित्तविक्षेप को अन्तरायो की श्रेणी में ही रखा है।

महर्षि ने पतंजलि योगदर्शन के सूत्र 1.31 में चित्तविक्षेप का वर्णन करते हुए कहा है –

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।

(प.यो.सूत्र 1/31)

दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास ये विक्षेप सहभुवः है।

महर्षि ने इन्हें विक्षेपसहभुवः माना है। ये नौ विक्षेपो के साथ ही अस्तित्व मे आते है। दुख तीन प्रकार के होते हैं दैहिक, दैविक और भौतिक। शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां दैहिक दुख, कुछ व्याधियों जिस पर स्वयं का नियंत्रण नहीं होता है जैसे बाढ़ आना, भूकंप आना, अत्यधिक सर्दी एवं गर्मी हो जाना आदि दैविक दुख है, जड़, चेतन आदि प्राणियों द्वारा मिलने वाला दुख भौतिक दुख में आता है। मन में किसी प्रकार का भाव आना दौर्मनस्य है।

कभी किसी के प्रति मन मे अच्छे भाव आयेंगे कभी किसी के प्रति बुरे भाव आयेंगे। ये दोनो ही भाव एक साधक के लिए दौर्मनस्य है। कभी–कभी शरीर के अंगो में अचानक कम्पन उत्पन्न हो जाता है। इसे ही अंगमेजत्व कहा जाता है। जैसे श्वास अन्दर आती है उसी प्रकार मन के अन्तराल में क्लिष्ट भाव का आना महर्षि पतंजलि जी के अनुसार श्वास है और इसी प्रकार जैसे श्वास बाहर जाती है उसी प्रकार साधक अभी जो पूर्णता को प्राप्त नही है उसके द्वारा स्वयं के अल्पज्ञान का व्यक्त हो जाना अर्थात् बाहर व्यक्त हो जाना ही प्रश्वास है।

2.10 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने पश्चात् हमे योग की परिभाषा, चित्त की अवधारणा, चित्त की वृत्तियां, चित्त की भूमियाँ, ईश्वर के स्वरूप एवं उनकी विशेषता जानकारी हो गई है। इस इकाई में योगदर्शन की प्रथमपाद समाधिपाद में वर्णित विषय–वस्तु को ही अभी तक हम लोगों ने समझने का प्रयास किया है। इस इकाई के माध्यम से हमने योगदर्शन में वर्णित योग के विभिन्न आयामो को समझा है। योग की परिभाषा को देते हुये जिस प्रकार से महर्षि ने योग का चित्त से संबंध स्थापित किया है। उससे हमें यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि, चित्त का योग में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है और चित्त की क्रिया–कलापो पर पूर्ण नियंत्रण के बिना योग की पूर्णता को प्राप्त कर पाना संभव नहीं है।

वस्तुतः इस इकाई के द्वारा हम योग, चित्त विक्षेप, अभ्यास–वैराग्य, ईश्वर का स्वरूप, विक्षेप सह–भुवः आदि अनेक विषयों को सरलता से समझ चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने सें हमें योग पथ की वास्तविक जानकारी भी प्राप्त गई है। योग की शुरूआत ही अनुशासन से होती है। बिना अनुशासन के हम योग के सही अर्थ को नहीं समझ सकते हैं। इस इकाई के पूर्ण होने के पश्चात हम कह सकते हैं कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम योग के विभिन्न पहलुओ जैसे योग की

विशेषेता, चित्त की विभिन्न अवस्थाओ आदि अनेक अवधारणाओ को समझकर योग के प्रति जिज्ञासु हो सकेंगे।

2.11 संदर्भ ग्रंथ

1. महर्षि पतञ्जलिकृत योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज।
2. योग सूत्र का परिचयात्मक अध्ययन– देव संस्कृति विश्व–विद्यालय।
3. योगसूत्र – वाचस्पति मिश्र
4. योगसूत्र – राजमर्तण्ड भोजराज

2.12 – संबंधित प्रश्न एवं उत्तर

2.12.1 दीर्घउत्तरी प्रश्न

1. महर्षि पतञ्जलि के द्वारा दी गई योग की परिभाषा पर विवेचना करें।
2. योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों एवं उसकी भुनियों को स्पष्ट करें।
3. योगदर्शन मे ईश्वर के स्वरूप और उनकी विशेषताओं के विषय में क्या वर्णन प्राप्त होता है ?

2.12.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अभ्यास एवं वैराग्य क्या है?
2. क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट वृत्तियो से आप क्या समझते हैं ?
3. प्रमाण वृत्ति से आप क्या समझते हैं?
4. चित्त की निरुद्ध भूमियाँ किसे कहते है?
5. प्रणव क्या है?

2.12.3. सत्य या असत्य बतायें –

1. चित्त की वृत्तियो का निरोध ही योग है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

2. वृत्तियाँ पाँच है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

3. प्रमाण एक वृत्ति है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

4. क्षिप्त एक वृत्ति है –

(अ) सत्य (ब) असत्य

5. एकाग्र एक चित्तभूमि है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

6. योगश्चित्तवृत्ति निरोधः सूत्र साधनपाद मे है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

7. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः सूत्र समाधिपाद से है –

(अ) सत्य (ब) असत्य

8. प्रणव ही ओम् है –

(अ) सत्य (ब) असत्य

9. क्लेशकर्मविपाकआशयअपरामृष्ट पुरुष विशेषः ईश्वर यह सूत्र समाधिपाद से है।

(अ) सत्य (ब) असत्य

10. विक्षेपसहभुवः की संख्या 5 है–

(अ) सत्य (ब) असत्य

उतर–

1– अ 2– अ 3– अ 4– ब 5– अ 6– ब 7– अ 8– अ 9– अ 10– अ

ईश्वर की अवधारणा और गुण, ईष्वर, प्राणिधान की प्रक्रिया, चित्त प्रसाधन, समाधि–सम्प्रज्ञात एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा, सबीज एवं निर्बीज समाधि–

इकाई–03

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 ईश्वर की अवधारणा और गुण

3.3 ईश्वर प्राणिधान की प्रक्रिया

3.4 चित्त प्रसादन

- 3.4.1 मैत्री
- 3.4.2 करूणा
- 3.4.3 मुदिता
- 3.4.4 उपेक्षा

3.5 समाधि–

- 3.5.1 सम्प्रज्ञात समाधि
- 3.5.2 असम्प्रज्ञात समाधि

3.6 ऋतम्भरा प्रज्ञा

3.7 सबीज समाधि

3.8 निर्बीज समाधि

3.9 सारांष

3.10 शब्दावली

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.11 संदर्भ ग्रंथ

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.12.1– दीर्घ प्रश्न उत्तर

3.12.2– लघुउत्तरीय प्रश्न

3.12.3– वस्तुनिष्ठ प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने अपनी कृति योग दर्शन में एक साधक को लक्ष्य में रखकर अपनी लेखनी को चलाया है। साधक को योगमार्ग पर चलने और साधना क्रम में बढ़ने के लिए विभिन्न यौगिक अंगो की आवश्यकता पड़ती है। महर्षि पतंजलि जी ने इन योग के अंगो को अपने ग्रंथ पतंजलि योग सूत्र में अष्टांग योग के नाम से बड़ी ही सुंदरता से सूत्रबद्ध किया है। आवश्यक नियमों को अपनाने एवं उनको पूर्ण रूपेण जीवन में लागू करने के लिए एक योगाभ्यासी को इन योग के आयामों को बहुत ही अनुशासनात्मक एवं संयमपूर्वक जीवन में अपनाने की आवश्यकता पड़ती है।

योगाभ्यासी को इसके लिए नित्य प्रति सजगतापूर्वक मन, कर्म एवं वचन से अपनाने और जीवन का एक लक्ष्य बनाकर साधना की जरूरत पड़ती है। इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुयें। महर्षि ने समाधिपाद में ही ईश्वर के स्वरूप, अभ्यास–वैराग्य समाधि के विभिन्न प्रकार ऋतम्भराप्रज्ञा, योगान्तराय, चित्त के प्रसन्नता के उपाय आदि का वर्णन कर दिया है।

इस इकाई को अध्ययन करने के पश्चात् हम योगमार्ग के महत्वपूर्ण आयामों जैसे– ईश्वर प्राणिधान, चित्त प्रसाधन, सबीज एवं निर्बीज समाधि आदि को समझ सकेंगे।

3.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम ईश्वर की अवधारणा एवं उनके गुणों को समझने में सफल होंगे।
- इस इकाई के द्वारा ईश्वर प्राणिधान की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- इस इकाई में हम चित्त प्रसाधन को समझेंगे।
- इस इकाई में हम सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि को समझेंगे।
- इस इकाई के द्वारा हम सबीज एवं निर्बीज समाधि को जान सकेंगे।

3.2 ईश्वर की अवधारणा एवं गुण

जब हम ईश्वर की अवधारणा की बात करते है। तो हम देखते है कि ईश्वर को लेकर वर्तमान समय में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों, समाज एवं राष्ट्रों में भिन्न–भिन्न मान्यतायें प्रचलित है। एक समाज में रहने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह जिस ईश्वर को मान्यता प्रदान करता है। यह जरूरी उस ईश्वर को उस सामाज में रहने वाले सभी लोग मान्यता प्रदान करें। एक ही सामाजिक परिवेंश में रहने वाले बहुत से लोग भिन्न–भिन्न ईश्वर को मानते है।

अधिकांशतः समाज, ईश्वर को मान्यता प्रदान करता है उस ईश्वर में वह कुछ विशेष गुण देखता है। ईश्वर वह है। जो कुछ अद्भुत शक्तियों को धारण किये हुये है।

इस प्रकार हम देखते है कि, ईश्वर के विषय में तरह–तरह की मान्यतायें समाज में प्रचलित है और जब हम महर्षि पतंजलि के विचारों को जानने का प्रयास करते है तो उनकी रचना पतंजलि योग दर्शन के प्रथम पाद 24 वें सूत्र में महर्षि ने ईश्वर के स्वरूप को वर्णन करते हुये कहा है कि, वह ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अपरामृष्ट है। वह सभी जगह उपस्थित और सबकुछ जानने वाला है। इसलिए वह सर्वज्ञ कहा जाता है। वह ईश्वर पूर्व में उपस्थित सभी गुरूओं का भी गुरू है। उसको 'प्रणव' के नाम से संबोधित किया जाता है।

महर्षि इसी पाद के 28वें सूत्र में कहते है–

तज्जपस्तदर्थभावन्।

(प.यो.सूत्र 1/28)

अर्थात् – उस ओम्कार रूपी प्रणव का जप करें और उस ईश्वर का ध्यान करें।

जब हम ईश्वर की अवधारणा कों महर्षि पतंजलि के अनुसार देखते है। तो हम पाते है कि, उन्होंने ईश्वर को नाम के रूप में 'प्रणव' अथार्त् 'ऊँ' माना है। तो 'ऊँ' ही ईश्वर का नाम है तथा ध्यान के लिए उन्होंने ईश्वर का ध्यान करने का निर्णय दिया है। ईश्वर एक है, उसको भिन्न–भिन्न लोग भिन्न–भिन्न तरीके से देखते है। कुछ लोग उसे निराकार तो कुछ उसे साकार, कुछ उसे सगुण तो कुछ उसे निर्गुण मानते है। एक ही ईश्वर को लोग अपने–अपने समझ के अनुसार देखने का प्रयास करते है। लेकिन आज भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों, पंथो को मानने वाले लोग भिन्न–भिन्न प्रकार से उस ईश्वर संबोधन करते है। वास्तव में वह ईश्वर एक है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार उस ईश्वर को ओम्कार के नाम से संबोधित किया जाता है। उसी को आत्मा, परमात्मा, परमतत्व, आदितत्व, सद्गुरू आदि अनेक नामों से भी संबोधित किया जाता है। परमात्मा का अर्थ है, जो आत्मा में श्रेष्ठ हों। इस प्रकार कई आत्माओं के समूहों में वह आत्मा जो श्रेष्ठ है वही परमात्मा है। ये सभी एक दूसरे के पूरक है। इसलिए महर्षि पतंजलि ने ईश्वर को गुरूओं का भी गुरू कहा है अर्थात् वही सद्गुरू है। इन्ही सद्गुरूओं को ध्यान और 'ऊँ' का जाप करने पर महर्षि ने बल दिया है।

नोट– प्रणव ही ऊँ कार है।

अभ्यास प्रश्न–

1. प्रणव से आप क्या समझते है?
2. ईश्वर के गुणों की विवेचना करें।

रिक्त स्थान भरें–

1. क्लेश कर्म विपाक ..... पुरूषविशेष ईश्वर ।।
2. तत्रनिरतिशयं ..... ।।

3.3 – ईश्वर प्रणिधान की प्रक्रिया

हम सभी जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते है। उसके लिए प्रयत्न भी करते है। मेहनत भी करते है। जितना हो सकता है उतना प्रयास भी करते है। सफलता प्राप्त करने पूरी कोशिश करते हैं। इस कोशिश में हम सफल भी होते है। कभी–कभी हमकों हमारी इच्छानुसार सफलता प्राप्त होती है तो कभी नहीं भी होती है। ये सभी एक प्रक्रिया से होकर गुजरती है। हम यह अनुभव अवश्य ही करते है कि हमारे जीवन में कही न कही किसी न किसी के प्रति हमारी श्रद्धा अवश्य होती है। हमारी सफलता किसी न किसी हद तक इन्हीं श्रद्धा पर ही निर्भर करती है।

जब हम पतंजलि योगदर्शन में वर्णित ईश्वर प्रणिधान को समझने का प्रयत्न करते है तो हमें योगदर्शन में प्रणिधान से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन प्राप्त होता है। लेकिन प्रणिधान का विषय–वस्तु का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

प्रणिधान का शाब्दिक अर्थ होता है समर्पण। जब इस प्रणिधान में ईश्वर शब्द जुड़ जाता है तब यह ईश्वर प्रणिधान बन जाता है अर्थात् ईश्वर के प्रति समर्पण प्रणिधान बन जाता है अर्थात् ईश्वर के प्रति समर्पण और यह समर्पण बिना किसी शर्त के (Unconditional) होना चाहिए। जब साधक पूर्ण समर्पण के साथ ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है। तब उस साधक में ईश्वर द्वारा "प्रदत्त" विभुतियां अपने आप प्रवाहित होने लगती है और वह साधक समाज का कल्याण करने की स्थिति में आ जाता हैं। आश्रय अर्थात् परमात्मा, की प्राप्ति साधक को होने लगती है और साधक क्रमोत्तर विकास करते हुए विवेक, वैराग्य, धारणा, ध्यान समाधि तक अवस्था को प्राप्त करता है। महर्षि इसे ही सूत्ररूप में प्रस्तुत करते हुये कहते है–

"ईश्वर प्रणिधानाद्वा"।

(प.यो.सूत्र 1/23)

अर्थात्, ईश्वर प्रणिधान से समाधि की प्राप्ति होती है।

योग के आयामों में समाधि को आठवां और अंतिम आयाम माना गया है। समाधि की अवस्था की प्राप्ति साधक को उसकी साधना की उच्चतम अवस्था में पहुचने पर ही प्राप्त होती है।

इसको भी महर्षि ने सूत्रबद्ध करते हुये कहा है–

मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोअपि विशेषः।

(प.यो.सूत्र 1/22)

मृदु, मध्य और अधि मात्रा के अनुसार साधक की साधना मे स्थिति होती है।

इस सूत्र के द्वारा महर्षि पतंजलि एक साधक के साधना की स्थिति का वर्णन कर रहे है। सांसारिक दृष्टि से कहा जाये। तो हम कह सकते है कि, जिस साधक की साधना जितना अधिक होगी। उसे उतनी ही तीव्र गति से लक्ष्य की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। लेकिन वस्तुतः योगपथ मे ऐसा नही होता है।

किसी साधक को लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है किसी कुछ अंतराल पर तो किसी को और अधिक समय के अंतराल पर उस लक्ष्य की प्राप्ति हो पाती है। वह लक्ष्य क्या है? जिसे पाने के लिए साधक साधना में तत्पर रहते है। यह वही लक्ष्य है जिसे हमारे ग्रन्थो में जीवन का परमलक्ष्य, निर्वाण, मोक्ष, ज्ञान की प्राप्ति आदि अनेक नामो से जाना जाता है।

अब यहां एक प्रश्न हमारे मन में उठना स्वाभाविक है कि, एक ही समय मे योगपथ मे लगने वाले साधक को इस लक्ष्य की प्राप्ति में समय का अंतराल भिन्न क्यों हो जाता है? तो महर्षि कहते है कि, ये साधक के साधना की मात्रा के साथ–साथ उसके पूर्व के संस्कारों पर भी निर्भर करता हैं। किसी साधक में संस्कारो का वेग अधिक रहता है। तो किसी मे संस्कार का वेग अल्प रहता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि, जब तक ये संस्कार है तब तक साधक को योग मार्ग के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति नही हो पाती है।

इसलिए जब साधक श्रद्धापूर्वक और पूर्ण समर्पण से ईश्वर या गुरू के प्रति समर्पित होकर साधना लगता हैं। तभी उसे लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो पाती है। यही समर्पण और श्रद्धा ही ईश्वर प्रणिधान है।

अष्टांग योग के द्वितीय अंग नियम के अंतर्गत भी हमें ईश्वर प्रणिधान का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ महर्षि ने इसे सूत्रबद्ध करते हुये कहा है–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।।

(प.यो.सूत्र 2/45)

ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्धि की प्राप्ति होती है।

यहाँ ईश्वर प्रणिधान की उच्चतम अवस्था में प्राप्त होने वाले स्थिति का वर्णन महर्षि ने किया है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से ही कल्याण संभव है और योगपथ में अभ्यास के द्वारा समाधि तक की स्थिति को प्राप्त कर पाना संभव है।

3.4 चित्त प्रसादन

चित्त प्रसादन से तात्पर्य है, चित्त की निर्मलता। साधक साधना में तभी सफल होगा। जब उसका चित्त लक्ष्य पर हों। चित्त का लक्ष्य पर दृढ़ होने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक होता है। चित्त की एकाग्रता तभी होगी जब चित्त निर्मल होगा। संसार में रहकर ही साधक साधना पथ पर अग्रेसर रहता है। ऐसी स्थिति में साधक को समाज के भले–बुरे अनुभवों से गुजरना पड़ता है। हम सभी कभी न कभी ऐसे परिस्थितियों से गुजरते है। जहाँ हमें अच्छे व बुरे अनुभव प्राप्त होते है।

महर्षि पतंजलि ने ऐसी ही स्थिति को देखते हुये पतंजलि योग दर्शन में चित्त निर्मलता के उपायों को सूत्ररूप में बद्ध करते हुयें कहा है–

मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

(प.यो.सूत्र 1/33)

अर्थात् सुखी व्यक्ति से मित्रता, दुखी से दया, पुण्य आत्माओं को देखकर प्रसन्नता तथा पापियों की उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है।

3.4.1 मैत्री

विचार करने की आवश्यकता है कि, वर्तमान समय में सुखी कौन है? जिससे मित्रता की जाये। तो अपने सभी ग्रन्थो में एक ही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि– एक प्रभु की भक्ति।

इसका उत्तर रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी देते हुयें कहते है–

सब कर मत खगनायक एहा।

करिअ राम पद पंकज नेहा।।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं।

रघुपति भगति बिना सुख नाही।।

(रामचरित मानस 7/121/14)

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि, राम के चरण कमलों से प्रेम करना चाहिए। श्रुति, पुराण और सभी ग्रंथ भी यही कहते है कि बिना रघुपति के भक्ति किये सुख नही है। तो सुखी वह है। जिसकी एक प्रभु के प्रति भक्ति जाग्रत हो गई। वह प्रभु अनासक्त भाव में स्थिति है।

जो बाह्य भोगों एवं विषयों से परें है दुर है वही सुखी है और ऐसे पुरूष ईश्वर परायण होकर अपने कर्म मे लगे रहते हैं। ये उन योगियो के लक्षण है। जो स्वयं में सुखी है और जो स्वयं मे सुखी है वहीं दूसरों को सुख दे सकता है। अतः मित्रता ऐसे ही ईश्वर परायख हुये सुखी व्यक्तियों से करनी चाहिए और ऐसे ही व्यक्ति स्वयं में सुखी होते हैं।

3.4.2 करूणा

चित्त प्रसादन का दूसरा उपाय करूणा है। करूणा या दया दुःखी व्यक्तियों के प्रति करूणा का भाव होना चाहिए तो दुःखी किसी कहेंगे? तो महर्षि के अनुसार जो संसार के माया–जाल में पूरी तरह डूब गया है। जो सुखी नही है जिसका मन चंचल है। वह दुःखी है। उसे कोई न कोई दुःख बना ही रहता है। तो ऐसे व्यक्तियों के प्रति दया का भाव रखना चाहिए। हमे दुःखी व्यक्तियों के प्रति करूणा का भाव रखना चाहिए।

3.4.3 मुदिता

चित्त प्रसादन का तिसरा अंग मुदिता अर्थात् प्रसन्नता है। तो महर्षि कहते है अच्छे व्यक्तियों को देखकर उनके द्वारा किये गये पुण्य कर्मो या अच्छे कर्मो की प्रशंसा करना चाहिए। उनके प्रति मन में प्रसन्नता का भाव रखना चाहिए। इससे भी चित्त प्रसन्न एवं निर्मल की अवस्था को प्राप्त होता है।

आदियोग ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते है कि, नियत विधि से किया गया कर्म ही पुण्य कर्म है। इस नियत विधि के आचरण का पालन करने वालो के प्रति हमें प्रसन्नता का भाव रखना चाहिए।

3.4.4 उपेक्षा

चित्त प्रसादन का चौथा अंग महर्षि ने उपेक्षा को बताया है। तो उपेक्षा का भाव किसके प्रति रखे? इस पर महर्षि कहते है कि, पापात्माओं के प्रति उपेक्षा का भाव रखना चाहिए। इस तरह की उपेक्षा का भाव करने से चित्त निर्मल होता है। अब प्रश्न स्वाभाविक है कि, पापात्मा कौन है? तो, जो पतन के मार्ग पर अग्रेसर है। जो नियत कर्म में अपने आप को नही लगाते है। इसी नियत कर्म को श्रीमद्भगवद्गीता में कार्यम् कर्म के नाम से भी संबोधित किया गया है।

इस प्रकार जो पापात्मा है, उनके संसर्ग मे या संग दोष में आने पर उनके गुण और दोष से तटस्थ रहने का प्रयत्न ही उपेक्षा है।

इसी संदर्भ में रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है–

उदासीन नित रहिअ गोसाई। खल परिहरिअ स्वान की नाई।।

मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरू हित कहइ न मोहि सोहाई।।

(रामचरितमानस, 7/105/15)

भावार्थ– हे गोसाई, ऐसे व्यक्तियों से सदा उदासीन रहना चाहिए। दुष्ट को कुत्ते की तरह त्याग देना चाहिए। दुष्ट व्यक्तियों को त्याग देने में ही भलाई उनसे दूर रहने में ही भलाई है। उनकी उपेक्षा करके ही हम चित्त को निर्मल बना सकते है।

व्यक्ति के गुण–दोष से असंग रहकर और उनको ग्रहण न करके हम उनसे तटस्थ रह सकते हैं। इस प्रकार की भावनाओं से हम अपने चित्त को निर्मल बना सकते है। यही वास्तिविक उपेक्षा हैं। हमे किसी व्यक्ति की उपेक्षा नही करनी हैं। बल्कि उस व्यक्ति के गुण और दोष की उपेक्षा करना है उनसे असंग का भाव रखना ही वास्तिविक उपेक्षा होगा।

3.5 समाधि

महर्षि पतंजलि ने अपनी रचना पतंजलि योगदर्शन में समाधि को विशेष महत्व प्रदान किया है। इसी कारण जब हम पतंजलि योगसूत्र को देखते है तो हमे प्रथम पाद (अध्याय) ही समाधि पाद के रूप दिखाई पडता है। प्रथम पाद को ही समाधिपाद का नाम देकर महर्षि ने समाधि के प्रति साधक में जिज्ञासा जाग्रत करने का प्रयास किया है।

योग के आठ अंगों में से समाधि अंतिम अंग है अर्थात साधनपथ में लगने पर हमें यम से शुरू करके समाधि तक की दूरी तय करना है। उसके बाद ही वास्तिविक योग की प्राप्ति होगी। योगपथ में समाधि का अपना विशेष महत्व है। समाधि को प्राप्त किये बिना कोई भी साधक परमपद या अंतिम लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता है।

समाधि के विषय में महर्षि वेद व्यास ने कहा है–

योगः समाधि।

(व्यास भाष्य, 1/1)

अर्थात, योग समाधि है।

इस उल्लेख से हमें समाधि के महत्व का अनुमान होता है। महर्षि वेदव्यास ने पूर्ण योग को ही समाधि बताया। अतः समाधि कोई ऐसी स्थिति है। जिस पर पहुचने के उपरांत ही साधक योग को प्राप्त कर सकता है।

इसी समाधि को प्राप्त करने के लिए साधक को चित्त की वृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही समाधि की अवस्था को प्राप्त कराता है।

जब हम समाधि के अर्थ को समझने का प्रयत्न करते है तो हम देखते है कि समाधि दो शब्दों से मिलकर बना है। "सम और आधि"। जहाँ 'सम' अर्थात् समान और 'आधि' अर्थात् 'मनोविकार' है।

अर्थात् मन के विकारों का समान या शांत हो जाना ही "समाधि" है।

जब मन के विकास पूर्ण रूप से शांत हो जाते है अर्थात् मन में उठनें वाली वृत्तियां शांत हो जाती है तब चित्त या मन शांत हो जाता है। पूर्ण एकाग्रता को प्राप्त कर निश्चल हो जाता है और यही अवस्था "समाधि" की अवस्था कहलाती है।

इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर साधक का बाह्य वातावरण से सम्पर्क टूट जाता है। साधक स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

समाधि को परिभाषित करते हुये महर्षि पतंजलि सूत्र रूप में व्यक्त करते है–

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपषून्यमिव समाधिः।

(प.यो.सूत्र 3/3)

केवल ध्येयमात्र की प्रतीति शेष रहना, और चित्त का स्वयं का स्वरूप शून्य सा हो जाये, तब ध्यान की यह स्थिति समाधि कहलाती है।

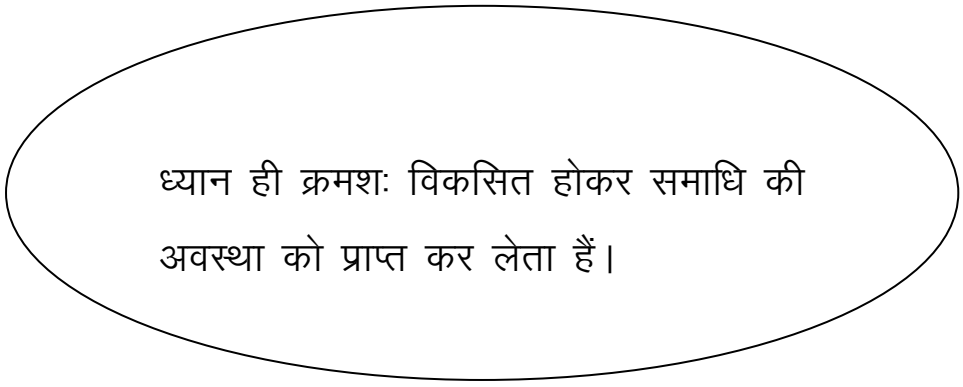

समाधि में समाधि को महर्षि पतंजलि ने मुख्यतः दो भागों में बाँटा– संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात समाधि।

अब हम इनको अलग–अलग समझेंगे–

3.5.1 संप्रज्ञात समाधि–

संप्रज्ञात समाधि, को सूत्ररूप में व्यक्त करते हुए महर्षि कहते है–

वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः।

(प.यो.सू 1/17)

वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के साथ प्राप्त होने वाली समाधि संप्रज्ञात समाधि है।

समाधि की वह अवस्था है, जिसमें वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता बनी रहती है। इन सब के रहते हुए भी जो समाधि की प्राप्ति होती है। समाधि की वह अवस्था संप्रज्ञात समाधि कहलाती है। साधक को योग की जानकारी तो होती है लेकिन उसके मन में वितर्क बना रहता है। इन विर्तको के उठने पर उनको रोकने के लिए विचार की आवश्यकता पडती हैं। विचारों के द्वारा ज्योंहि इन वितर्कों का निवारण हो जाता हैं। साधक को आनन्द की प्राप्ति होने लगती है। अस्मिता वह स्थिति है जिसमें प्रकृति और पुरूष का मिश्रण बना रहता हैं।

इस प्रकार इनसे चारों से संयुक्त चित्त का जो निराकरण हैं। वही संप्रज्ञात योग कहलाता है। संप्रज्ञात योग में साधक समाधि को प्राप्त तो करता है। लेकिन अभी उसका चित्त अभी निर्मलता को प्राप्त नही हो पाया है। अभी वह पूर्ण समाधि को प्राप्त नही कर पाया है। अभी उस योग पथिक को और अभ्यास की जरूरत हैं। अभी वह मार्ग का पथिक ही हैं।

चित्त जब इस प्रकार की स्थिति प्राप्त होता है। तो यह स्थिति ही संप्रज्ञात समाधि कहलाती है।

इस अवस्था को प्राप्त साधक के त्रिगुण, अर्थात् सत्, रज्, तम तीनों में से जब रज् और तम् शान्त हो जाते है और सत् गुण तत्व ही शेष रह जाता है। जिससे सत् गुण प्रधानावस्था में पहुच जाता है।

नोट– महर्षि पतंजलि ने संप्रज्ञात समाधि को चार भागों में बांटा है–

- वितर्क समाधि
- विचार समाधि
- आनन्द समाधि
- अस्मिता समाधि

3.5.2 असंप्रज्ञात समाधि –

समाधि की वह अवस्था जिसमें केवल संस्कार ही शेष रह जाता है। अर्थात् चित्त की अवस्था जो पूणरूपेण शांत हो जाता है। असंप्रज्ञात समाधि कहलाती है।

महर्षि पतंजलि ने असंप्रज्ञात समाधि का वर्णन पतंजलि योगसूत्र में निम्न प्रकार से किया है–

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोअन्यः।

(प.यो.सूत्र 1/18)

जब अभ्यास के द्वारा पूर्व की स्थिति पर विराम लग जाए और संस्कार ही शेष रह जाता है। वह योग अन्य है। अर्थात् योग की यह अन्य अवस्था ही असंप्रज्ञात समाधि है।

यह पूर्व की जो अवस्था है उसे वितर्क, विचार, आनन्द, और अस्मिता कहते है। अर्थात् संप्रज्ञात समाधि की अवस्था से जब उपर की अवस्था प्राप्त होती है। वह अवस्था असंप्रज्ञात कहलाती है। इस अवस्था को प्राप्त साधक का केवल संस्कार ही शेष रह जाता है।

यह अवस्था वास्तव में कैवल्य की अवस्था है। यह सूक्ष्मता को प्राप्त अवस्था है यह अनिर्वचनीय है। इस अवस्था को प्राप्ति के लिए साधक को अनेक जन्मों तक की यात्रा करनी पडती है।

ध्रुव, प्रहलाद, जडभरत, शुकदेव आदि अनेक उदाहरण भरे पडे है। जिन्होने पुर्णत्व को प्राप्त किया। बुद्व भी इसी प्रकार अनेक जन्मों तक की यात्रा करते हुए। बुद्वत्व को प्राप्त किए और अंत में बुद्व कहलाए। स्वामी परमहंस परमानन्द जी का जीवन परिचय लेने पर इसी प्रकार की अनेक जन्मों की यात्रा की जानकारी प्राप्त होती है।

आगे महर्षि ने असंप्रज्ञात समाधि के दो भेद बताये है–

- भव प्रत्यय
- उपाय प्रत्यय

भव प्रत्यय– महर्षि ने भव प्रत्यय का वर्णन करते हुयें कहा है–

भवप्रत्ययों विदेहप्रकृतिलयानाम्।

(प.यो.सूत्र 1/19)

विदेहावस्था को प्राप्त साधक जिसकी प्रकृति लय हो चुकी है इस अवस्था को प्राप्त योगी का भवप्रत्यय ही शेष रह जाता है। विदेहावस्था की प्राप्ति में प्रकृति का लय हो जाता है और भवप्रत्यय वह है जहा जन्म लेना ही शेष रह जाता है।

अर्थात् जन्म लेते ही पूर्ण योग की प्राप्ति हो जाती है। इसी अवस्था को प्राप्त श्री कृष्ण एक पूर्ण योगेश्वर भगवान कहलाए। उनके जन्म ग्रहण करते ही अनेक सिद्वियां उनके जन्म के साथ आ गयी। जब साधक साधना पथ पर आगे बढ़ते हुये प्रकृति के भेदों को जानकर उन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो वह प्रकृति में लीनता को प्राप्त कर लेता है। इसें ही प्रकृतिलय समाधि कहते है।

उपाय प्रत्यय– भव प्रत्यय के बाद महर्षि पतंजलि ने उपाय प्रत्यय का वर्णन करते हुये कहा है। असंप्रज्ञात समाधि उपाय प्रत्यय से भी प्राप्त किया जाता है। भव प्रत्यय में जन्म लेते ही साधक को असंज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती हैं। लेकिन अन्य साधको को यह समाधि या योग कैसे प्राप्त होता है?

इस पर महर्षि कहते है–

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

(प.यो.सूत्र 1/20)

अर्थात् अन्य साधको को यह योग श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक इस क्रम मे क्रमशः प्राप्त होती है।

समाधि तक की दूरी के लिए सर्वप्रथम साधक में श्रद्वा होना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में है– श्रद्वावांल्लभते ज्ञानं। इस योग में साहस के साथ डटे रहना ही दूसरी आवश्यकता है। कठिनाई आने पर भी साधक को योगपथ से विचलित नही होना चाहिए। स्मृति का सदैव बने रहना इस पथ की तिसरी आवश्यकता हैं। उस परमतत्व से मिलने वाले सन्देशों उनके द्वारा प्रदान किये गये निर्देशो को पकड़ने की योग्यता ही प्रज्ञा कहलाती है।

इस प्रकार अन्य लोगो को यह योग क्रमशः क्रमोन्नत विकास करते हुए अपने पूर्णता को प्राप्त करता है। योग पथ पर चलते हुए क्रमशः यह योग साधक को प्राप्त हो जाता है।

3.6 ऋतंभरा प्रज्ञा

ऋतंभरा प्रज्ञा के विषय में महर्षि लिखते है, कि अध्यात्म प्रसाद के फलस्वरूप ऋतंभरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। अध्यात्म प्रसाद से आशय है मन की प्रसन्नता निर्मलता इससे प्राप्त होने वाले लाभ के रूप में ऋतंभरा प्रज्ञा को जाना जाता है।

महर्षि पतंजलि ने सूत्र रूप में ऋतंभरा प्रज्ञा का वर्णन करते हुए सूत्र दिया है–

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा।।

(प.यो.सूत्र 1/48)

अर्थात्– उस स्थिति में साधक की प्रज्ञा, ऋतंभरा से एकीकार हो जाती है।

प्रज्ञा का अर्थ होता है 'बुद्धि' तथा ऋतंभरा से तात्पर्य सत्य से संयुक्त। इस प्रकार सत्य से संयुक्त बुद्धि ही ऋतंभरा प्रज्ञा कहलाती है। वह बुद्धि परमात्मा को धारण करने की क्षमता से संयुक्त हो जाती है।

परमात्मा ही यर्थाथ सत्य है इसलिए उस साधक की बुद्धि परमात्मा के निर्देशनों को पकड़ने और उस पर चलने की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। इसे ही अध्यात्म का प्रसाद कहा जाता है और उस साधक को अब सिर्फ उस परमात्मा को पाना ही शेष रह जाता है।

3.7 सबीज समाधि

जब हम सबीज समाधि को समझने का प्रयास करते है तो हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते है कि समाधि को पढ़कर समझा नहीं जा सकता है। समाधि तो वह अवस्था है। जिसको एक पथिक चलकर ही समझ सकता है। यह पूर्णतः अनुभव करने की वस्तु है या इससे भी आगे हम कहें तो जहाँ अनुभव भी समाप्त हो जाता है और पथिक शून्य अवस्था में पहुँच जाता है।

इस प्रकार समाधि एक ऐसी स्थिति है जहाँ पर पथिक स्वयं चलकर पहुँचता है। अब यहाँ महर्षि ने सबीज समाधि का वर्णन किया है। सबीज जैसा की नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि कुछ न कुछ बीज शेष है। अभी पूर्णतः समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हुई है।

हम महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में कई समाधियों का वर्णन प्राप्त करते है। उनमें से एक सबीज समाधि का वर्णन भी प्राप्त होता है।

जिसके लिए महर्षि ने सूत्र रूप में कहा है–

ता एव सबीजः समाधिः।

(प.यो.सूत्र 1/46)

अर्थात्, अभी चित्त पूर्ण समाधि को नही प्राप्त हुआ है। अभी बीज शेष है।

महर्षि ने इस सूत्र के माध्यम से सबीज समाधि की स्थिति सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार समाधियों को संकेत किया है और निर्णय दिया है कि ये सभी सबीज समाधि ही है। अर्थात् चित्त में कही न कहीं बीज विद्यमान है।

3.8 निर्बीज समाधि

सबीज समाधि को समझने के पश्चात् अब हम निर्बीज समाधि को समझेंगे। जिस प्रकार सबीज समाधि में चित्त में बीज शेष रह जाते है और चित्त में कहीं न कहीं संस्कार अवशेष रह जाता है। उन्हें समाप्त करने की आवश्यकता होती है, बिना उन संस्कारों एवं बीज के नष्ट हुये हमें पूर्ण समाधि की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए साधक को अभी योगपथ में निरंतर जुटें रहने की आवश्यकता होती है।

जब साधक इन स्थितियों में भटकाव से दूर रहते हुयें निरतर साधना में रत रहता है। तो अंत में वह अवशेष संस्कारों एवं बीज को भी नष्ट करने में सफल हो जाता है और उसे पूर्ण समाधित्व की प्राप्ति हो जाती है इस पूर्ण प्राप्त समाधि को ही निर्बीज समाधि के रूप में जाना जाता है।

निर्बीज समाधि का वर्णन करते हुये महर्षि कहते है–

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधि।

(प.यो.सूत्र 1/51)

अर्थात्, उसके (ऋतभरा प्रज्ञा) से उत्पन्न संस्कारो का भी जब निरोध हो जाता है तो सर्व निरोध हो जाने की इस स्थिति को निर्बीज समाधि कहा जाता है।

यहाँ इस सूत्र को समझने का प्रयास करें तो हम सभी इस बात से बिल्कुल सहमत होंगे कि महर्षि ने किसी के "निरोध" होने की स्थिति को ही सभी "निरोध" की प्राप्ति माना है और उसके बाद ही निर्बीज समाधि की प्राप्ति संभव है।

तो आखिर वह कौन सी स्थिति है जिससे सभी निरोध संभव है?

उसके लिए हमें पतंजलि योग सूत्र के 1.50 सूत्र को भी विश्लेषण की आवश्यकता है।

इसलिए महर्षि कहते है–

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी।

(प.यो.सत्रू 1/50)

अर्थात्, उससे (ऋतंभरा प्रज्ञा) उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य संस्कारों को प्रतिबंधित करता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है हो रहा है कि, ऋतंभरा प्रज्ञा से भी संस्कार उत्पन्न होता है। लेकिन वह अन्य संस्कारो का निरोध कर देती है।

संस्कारों के पूर्ण निरोध हुए बिना निर्बीज समाधि संभव नहीं है। इस तरह यहाँ यह स्पष्ट हो रहा है कि जब तक ऋतंभरा प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाले संस्कारों का निरोध भी आवश्यक है और जब इन संस्कारो का निरोध होता है तब सर्वनिरोध प्राप्त हो जाती है और इसके उपरान्त ही निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है।

3.9 सारांश

उपर्युक्त इकाई में हम विभिन्न विषयों जैसे– ईश्वर, समाधि, चित्त, समाधि के विभिन्न प्रकारों, ऋतंभरा प्रज्ञा आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त कर पतंजलि योग दर्शन के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इन सभी विषयों का अध्ययन करने से हमें योग के प्रति निश्चित रूप से जिज्ञासा उत्पन्न होगी और हम योग को और अच्छी तरह से जानने व समझने के योग्य हो गयें है।

योग के अन्तर्गत ही हम ईश्वर, उसकी विशेषता, निर्बीज समाधि, सबीज समाधि, ऋतंभरा प्रज्ञा आदि का अध्ययन करते है।

इस इकाई में उपर्युक्त विषयों का अच्छी तरह समायोजन हुआ है।

3.10 कठिन शब्द

चित्त प्रसादन – चेतना का हर्षित या खुश होना।

सम्प्रज्ञात समाधि – अच्छी प्रकार जाने जाना वाला या का जा सकने योग्य।

प्रज्ञा	– बुद्धि. समझ
ऋतंभरा	– सदा एक रस रहने वाली सात्विक बुद्धि।
प्रणिधान	– समर्पण या समर्पित
प्रणव	– ओंकार (ऊँ)
सबीज	– बीजाक्षर से युक्त (संस्कारो से युक्त)
निर्बीज	– बीज रहित (संस्कारों से रहित)
असम्प्रज्ञात	– जिसका वर्णन न किया जा सकें। जिसमें स्वयं का भान भी न हो।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. योगसूत्र का परिचयात्मक अध्ययन – देव संस्कृति विश्वविद्यालय।
2. महर्षि पतंजलिकृत योगदर्शन – स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी
3. योगसूत्र – वाचस्पति मिश्र
4. योग दर्शन – राजवीर शास्त्री

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.12.1 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. चित्त प्रसादनम् से आप क्या समझते है? यह कैसे प्राप्त करेंगे?
2. ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुये उनकी विशेषताओं एवं गुणों की व्याख्या करें।

3.12.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. चित्त से आपका क्या तात्पर्य है?

2. ईश्वर के गुण क्या–क्या है?
3. सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
4. सम्प्रज्ञात समाधि के कितने भेद है?

3.12.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ईश्वर का वर्णन पतंजलि योग सूत्र के किस पाद में है?

   (अ) समाधि पाद (ब) साधन पाद (स) विभूति पाद (द) कैवल्यपाद

2. ईश्वर के लिए महर्षि ने किस शब्द का प्रयाग किया है?

   (अ) प्रणव (ब) राम (स) शिव (द) आत्मा

3. ईश्वर किन–किन गुणों से परे है।

   (अ) क्लेश (ब) कर्म (स) विपाक आशय (द) इनमें सें सभी

4. प्रणिधान से क्या आशय है?

   (अ) सम्मान (ब) अनुभव (स) समर्पण (द) योग

5. "चित्त प्रसादनम्" का वर्णन पतंजलि योगसूत्र के किस पाद में है?

   (अ) साधन पाद (ब) कैवल्यपाद (स) समाधि पाद (द) विभूतिपाद

6. चित्त प्रसादनम् में क्या शामिल नहीं है?

   (अ) मैत्री (ब) करूणा (स) मुदितो (द) ध्यान

7. महर्षि के अनुसार मैत्री किससे करना चाहिए?

   (अ) दुःखी पुरूणें से (ब) परेशान व्यक्ति से (स) दयालू व्यक्ति से (द) सुखी व्यक्ति से

8. महर्षि के अनुसार उपेक्षा कैसे व्यक्तियों की करनी चाहिए?

   (अ) सुखी व्यक्ति की (ब) पुण्य आत्माओं की (स) दुःखी व्यक्तियों की (द) अपुण्य व्यक्तियों की।

9. सम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन किस पाद में है?

   (अ) समाधि पाद (ब) साधन पाद (स) विभूति पाद (द) कैवल्य पाद

10. संप्रज्ञात समाधि के प्रकार में क्या शामिल नही है?

(अ) वितर्कानुगत (ब) विचारानुगत (स) आनंदानुगत (द) ध्यानानुगत

द्वितीय खण्ड परिचय

इकाई .04 – क्रिया योग – तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान,
पंच क्लेश– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनेवेश

इकाई .05 – कर्माशय एवं कर्म विपाक की अवधारणा
दृश्यनिरुपण, दृश्टानिरूपणम, प्रकृति पुरुष संयोग

इकाई .06 – अष्टांग योग (बहिरंग साधना) यम, नियम आसन, प्राणायाम प्रत्याहार की अवधारणा

क्रिया योग एवं पंचक्लेश

इकाई–04

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 क्रियायोग

4.2.1 तप

4.2.2 स्वाध्याय

4.2.3 ईश्वर प्रणिधान

4.3 पंच क्लेश

4.3.1 अविधा

4.3.2 अस्मिता

4.3.3 राग

4.3.4 द्वेष

4.3.5 अभिनिवेश

4.4 सारांश

4.5 संदर्भ ग्रंथ

4.6 सम्बन्धित प्रश्न एवं उत्तर

4.6.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

4.6.2 लघुत्तरीय प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

योग मन सहित इन्द्रियों पर अनुशासन की स्थापना है। यह अनुशासन क्रियायोग के पालन से संभव है। क्रिया योग का वर्णन महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ पतंजलि योगसूत्र में किया है। इसी क्रिया योग का वर्णन हमें परमहंस योगानंद के आत्मकथा योगी कथामृत में भी देखने को मिलती है। क्रिया योग योग के साधना मे एक सहायक अंग के रूप मे कार्य करता है। जिसे हम आगे इस इकाई में विस्तार से समझने का प्रयास करेंगें।

इस इकाई के द्वारा हम पंच क्लेशों का भी अघ्ययन करेंगें। इन पंच क्लेशों के अन्तर्गत महर्षि ने अविधा, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश को शामिल किया है। ये पंच क्लेशों योग के अंतिम आयाम समाधि तक की यात्रा में बाधक माने जाते है। अतः इन क्लेंशो का निराकरण एक साधक के लिए आवश्यक हो जाता है। यह इकाई एक तरह से योग की प्राप्ति के लिए महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये साधनों का वर्णन करता है।

आशा है यह इकाई योग के शिक्षार्थियों को उनके योग साधना में मदद करेगी। उन्हे महर्षि पतंजलि के द्वारा बताये गये योगसूत्रो एवं योग के सहायक साधनों को सरलता से समझने में सहायता करेगी।

4.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के द्वारा आप क्रिया योग को समझ सकेंगे।
- क्रिया योग का वास्तविक आशय को समझ सकेंगें।
- योग में क्रिया योग के महत्व को जान सकेंगे।
- क्रिया योग का जीवन में क्या महत्व है उसे समझकर उस पर चल सकेंगे।
- क्रिया योग के विभिन्न अंगों को जान सकेंगें।
- तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान के महत्व और उनका योग में क्या महत्व है। उसे जान सकेंगें।

4.2 क्रियायोग

कार्य करते हुए योग में स्थापित होना क्रिया योग है। योगसूत्र के अनुसार तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन तीनों को संयुक्त रूप से क्रिया योग कहा जाता है। पतंजलि योग सूत्र के पहले पाद समाधि पाद में महर्षि ने ईश्वर के स्वरूप, उनकी वास्तविक स्थिति उनके नाम, गुण आदि का वर्णन किया। उसके उपरांत द्वितीय पाद में हमे उस ईश्वर तक पहुचने के लिए किन–किन साधनो की आवश्यकता है। उन साधनो का वर्णन किया हैं। यही कारण हैं कि, इस पाद को महर्षि ने साधन पाद का नाम दिया।

क्रियायोग उन्ही साधनो में से एक हैं। जिसके द्वारा उस ईश्वर तक की दूरी और योग के अंतिम आयाम समाधि तक पहुचनें में एक योग पथिक को सहायता प्राप्त होती है।

वास्तव मे क्रिया योग वह माध्यम है जिससे मध्यम कोटि के साधक योग साधना मे लाभ प्राप्त कर सकते हैं। महर्षि ने मध्यम कोटि के साधको को चित्त की शुद्वि के लिए क्रिया योग को अपनाने का बल दिया है। इस क्रिया योग को अपनाकर साधक अपने चित्त का निरोध धीरे–धीरे क्रमशः करने में सफल हो जाता है।

हम जानते है कि बिना चित्त के निरोध के योग की प्राप्ति नही हो सकती है। योग की वास्तविक प्राप्ति के लिए चित्त का निरोध नितांत आवश्यक है। अतः क्रिया योग का पालन मध्यम कोटि के साधको को अपनाना आवश्यक है।

आगे हम इस क्रियायोग के तीन अंगो तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को देंखगे। जिसको महर्षि ने इसी क्रिया योग के अन्तर्गत रखा है। उसके पश्चात हम तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान का अलग–अलग विवेचना करेंगें।

क्रिया योग का वर्णन करते हुए महर्षि कहते है–

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

(प.यो.सत्रू 2/1)

अर्थात्, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान क्रिया योग है।

ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के साथ किया जाने वाला एक यौगिक साधना पद्धत्ति जिसके द्वारा निरन्तर स्वमुल्यांकन एवं सुधारात्मक अभ्यास करना क्रिया योग है।

इस क्रिया योग के अन्तर्गत मन सहित इन्द्रियों के बहिर्मुखी प्रवाह को च्युत कर अन्तर्मुखी क्रियाओं की ओर अभिमुख करने हेतु अभ्यास किया जाता है। इस प्रकार के अभ्यास के द्वारा ही मध्यम कोटि के साधक चित्त की वृत्तियों का निरोध करने में सफल हो पाता है।

क्रिया योग के अभ्यास के फलस्वरूप साधक सरलता पूर्वक अपनी साधना में अग्रेसर होकर अपनी बाधक तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसी अभ्यास के कारण साधक मध्यम कोटि से उच्च कोटि के स्तर तक पहुंच जाता है।

वस्तुतः महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित यह योग पद्धत्ति पूर्णतः साधना की विधि विशेष है। जिसका उपयोग करके कोई भी साधक समाधि तक अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

महर्षि पतंजलि ने साधक को क्रियायोग की आवश्यकता क्यो है? इस पर सूत्र में कहते है–

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।

(प.यो.सूत्र 2/2)

अर्थात्, समाधि की भावना तथा क्लेशों को तनु (क्षीण) करने के लिए।

इस प्रकार महर्षि ने स्वयं ही निर्णय दिया है कि, क्रियायोग के माध्यम से साधक समाधि के प्रति श्रद्धा को स्थिर करने योग्य हो जाता है। साथ ही साथ उसे क्लेशो को कमजोर, क्षीण करने में भी लाभ प्राप्त होता हैं।

महर्षि ने क्लेशों को पंच क्लेश के रूप में विभाजित किया है। जिनका विश्लेषण आगे इसी अध्याय में देखेंगे।

अब हम इनका अलग–अलग विश्लेषण करेंगे–

4.2.1 तप

सहनशीलता, धैर्य एवं सहिष्णुता का अभ्यास तप कहलाता है। सर्दी, गर्मी, भूख–प्यास इत्यादि प्राकृतिक चीजों पर अनुशासन सहा जाना तप है। तप के अभ्यास इन्द्रियों के राग द्वेष से रहित इच्छित स्थान पर मन को लगाया जा सकता है। मन सहित इन्द्रियों को ईष्ट के अनुरूप तपाना तप कहलाता है।

तप के द्वारा ही साधक का मन और शरीर उसके नियंत्रण में आ जाता है और साधक योग साधना में निरंतर अभ्यास करते हुए उत्तरोत्तर विकास करता जाता है।

इसी तप के द्वारा ही वह साधक साधना के शुरूआती दिनों में आने वाले बाह्य आघातों जैसे– सामाजिक अपमान, अवहेलनाओं आदि को सहने योग्य हो जाता है। साथ ही साथ आन्तिरिक विकारों से भी पार पा जाता है।

इस प्रकार मध्यम कोटि के साधको के लिए तप नितांत आवश्यक हो जाता है।

महर्षि पतंजलि तप के लिए सूत्र का निरूपण करते हुए कहा है–

कायेंन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

(प.यो.सत्रू 2/43)

अर्थात्, तप के अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि और शुद्धि हो जाती है।

यहां महर्षि पतंजलि तप के अभ्यास से मिलने वाली शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि और शुद्धि का वर्णन किया है। यह एक प्रकार की विभूति है। जिसके प्राप्ति के पश्चात साधक को साधना में स्थिरता की प्राप्ति होने लगती है।

इस अवस्था को प्राप्त साधक अपने आस–पास के वातावरण से अप्रभावित रहता है। उसके शरीर पर सर्दी–गर्मी का कोई प्रभाव नहीं पडता है। वह सरलता से सभी प्रकार से वातावरण में सामान्य पूर्वक रह सकता है।

इसी तप की उच्च अवस्था कों प्राप्त हुआ साधक अपने इन्द्रियों को भी सिद्ध कर लेता है। जिसके परिणामस्वरूप उस साधक को अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। उससे वह अपने इन्द्रियों को जहा चाहे वहा लगा सकता है। वह राग और द्वेष को जीत लेता है।

इस प्रकार इस तप के द्वारा साधक विशेष अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार तप से रहित सामान्य जीव का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते है–

जहँ तहँ इन्द्रिय तान्यों।

(विनय पत्रिका, 88/1)

बिना तप की विधि जाने सामान्य जीव की अपने इन्द्रियों के वशीभूत हुआ उसी के अनुसार भटकता रहता है।

इसी तरह गीता में भी भगवान कृष्ण सामान्य जीव के विषय में वर्णन करते हुए कहते है कि, तप से रहित सामान्य जीव की का मन विषयों में विचरती हुई जिस भी इन्द्रिय के साथ रहता है।

वह एक इन्द्रिय उस तपरहित जीव के मन का उसी प्रकार अपहरण कर लेती है जिस प्रकार समुद्र में उठा हुआ तुफान बडी–बडी नावों का अपहरण कर उन्हे डुबा देती है।

इसलिए सर्वप्रथम इन्द्रियों का संयम किया जाता है और मन को साधना में लगाया जाता है।

पुज्य गुरूदेव भगवान कहतें है– मनसहित इन्द्रियों को इष्ट के अनुरूप तपाना ही तप है।

4.2.2 स्वाध्याय

स्वाध्याय शब्द का शाब्दिक अर्थ है, स्वयं का अध्ययन। यहां पर हमारे मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, स्वंय का किस प्रकार का अध्ययन? तो योगपथ में लगे हुए साधक को योग की प्राप्ति के लिए चित्तवृत्ति का निरोध करने का अभ्यास करना पडता हैं।

चित्तवृत्ति का निरोध एक बहुत ही कठिन, समय लेने वाली और निरंतर अभ्यास में लगे रहने की प्रकिया है। पूर्ण समर्पण से निरंतर लगे रहने वाले साधक को ही अपने चित्त के निरोध की प्राप्ति हो पाती है। थोडा भी भटकाव साधक को उसको साधना मार्ग से भटका देता है।

इसी कारण कभी–कभी बहुत उच्च अवस्था को प्राप्त हुए साधक भी मार्ग से भटकते हुए दिखलाई पडते है और पद से च्युत हो जाते हैं।

साधक को इस अवस्था से बचने के लिए ही स्वाध्याय की आवश्यकता पडती हैं। इस योग साधना में सफलता के साधक को निरंतर स्वयं का मुल्यांकन करना पडता हैं। इसी स्वमुल्यांकन को सचेतावस्था में क्रियात्मक रूप देना स्वाध्याय है।

इस प्रकार स्वयं के अभ्यास का सदैव सचेतावस्था में रहकर मूल्यांकन करते रहना स्वाध्याय कहलाता है। यह अपने प्रति जागरूक रहकर योग साधना में अभ्यासरत होना है।

अपने प्रत्येक विचार, प्रत्येक श्वांस का अवलोकन करना और ईष्ट भाव की ओर मोड़ना स्वाध्याय की विधि है।

स्वाध्याय के लिए महर्षि ने सूत्र दिया है–

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

(प.यो.सूत्र 2/44)

स्वाध्याय के सिद्ध होते ही ईष्ट से सम्पर्क होने लगता है।

स्वाध्याय में साधक को अपनी साधना का मुल्यांकन करना पडता है साधक अपनी साधना में कितना प्रगति कर पाया, कितना शेष है, कितना समय दे रहा है, कितना देना चाहिए? आदि का मुल्यांकन साधक करता है।

जब साधक इस प्रकार मुल्यांकन करता हुआ स्वाध्याय की सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो उस साधक के लिए महर्षि कहते है, उस अवस्था को प्राप्त साधक, इष्टदेवता सम्प्रयोगः। अर्थात् इष्ट देव की विभूतियों से ओत–प्रोत हो जाता है उस इष्ट के सम्पर्क में आ जाता है।

4.2.3 ईश्वर प्रणिधान

क्रिया योग की तिसरी और अंतिम अवस्था ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर के प्रति मन, वचन और कर्म पूर्वक सम्पूर्ण समर्पण ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। इसमें साधक द्वारा प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक ग्रहण, प्रत्येक दान, प्रत्येक भाव ईष्ट को समर्पित करके ही सम्पादित किया जाता है।

यह भक्ति का सम्पादन है। प्रेम व श्रद्धा का समर्पण है। ईश्वर प्रणिधान एक अभ्यास क्रिया है जो तप, स्वाध्याय के उपरांत ही प्राप्त होती है। यह निरंतर अभ्यास की विषय वस्तु है।

ईश्वर प्रणिधान के अभ्यास के द्वारा साधक निरंतर क्रमोन्नत विकास करते हुए उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहां से वह अपने आपको ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण भाव से समर्पित कर देता है। जिसके परिणाम स्वरूप साधक योग की अन्तिम अवस्था समाधि तक पहुंच जाता है।

वस्तुतः ईश्वर प्रणिधान की उच्च अवस्था में साधक पंच क्लेशो पर विजय प्राप्त करने की स्थिति में आ जाता है। साधक के त्रिगुणों का प्रभाव भी कम होने लगता है और साधक अपने चित्त की एकाग्र अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान का वर्णन करते हुए सूत्र दिया है–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

(प.यो.सूत्र 2/45)

अर्थात्, ईश्वरप्रणिधानात से समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है।

यहां सूत्र के माध्यम से महर्षि ने ईश्वर प्रणिधान को परिभाषित करते हुए बताया है कि ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि हो जाती हैं। ईश्वर प्रणिधान को हम पहले जान चुके है अर्थात् ईश्वर के प्रति तन, मन, कर्म, वचन से पूर्ण समर्पण अर्थात् पूर्ण रूप से एक ईश्वर के प्रति श्रद्धा।

लेश मात्र भी अन्य कही श्रद्धा ना हो। समाधि दो शब्द सम और आधि से मिलकर बना है। जिससे तात्पर्य है उस आदि तत्त्व परमात्मा से समत्व हो जाना।

अब हम पंच क्लेशों पर विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें–

4.3 पंच क्लेश

जीवन में दुःख है। योग इन दुखों के निवारण का आश्वासन देता है। दैहिक दुःख, दैविक दुःख एवं भौतिक दुःख ये तीन प्रकार के दुःख हैं। इन दुःखों का मूल कारण क्लेश है। क्लेश पाँच प्रकार के हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। ये पाँचों क्लेश ही जीव को संसार चक्र या भव चक्र में घुमाते रहते हैं। ये ही जन्म, मृत्यु के कारण हैं एवं महादुःखदायक है।

महर्षि पतंजलि ने इन क्लेशों को सूत्ररूप में परिभाषित करते हुए कहां है–

अविधास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।

(प.यो.सूत्र 2/3)

अविधा, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पंच क्लेश है।

इस प्रकार महर्षि ने स्पष्ट रूप से पंच क्लेशो का वर्णन करके साधक को एक स्पष्ट लक्ष्य प्रदान कर दिया कि, योग मे अभ्यास रत साधक को इन्ही पांच क्लेशो को नष्ट करना है। साधक के सामने महर्षि ने इतना स्पष्ट लक्ष्य देकर साधक को योग के प्रति जिज्ञासा भी उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

अब हम इन क्लेशों का अलग–अलग अध्ययन करेंगे–

4.3.1 अविद्या

अविद्या सभी क्लेशो मे प्रथम और प्रधान क्लेश है। अनित्य को नित्य मानना, परिवर्तनशील को अपरिवर्तनशील समझना, परिवर्तनशील शरीर को स्वयं का वास्तविक स्वरूप मानना इत्यादि अविद्या रूपी क्लेश है। अविद्या परवर्ती चार क्लेशों का उत्पादक क्षेत्र है। अस्मितादि समाप्त हो जाने पर भी अविद्या बनी रहती है।

जब हम क्लेशों का विश्लेषण करते है तो हम पाते है कि, ये क्लेश कभी उग्र स्थिति में होते है तो कभी ये प्रसुप्त स्थिति में रहते है। इस प्रकार हमे ये जानना आवश्यक हो जाता है कि, जब ये क्लेश दिखलाई नही पडते है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये क्लेश नहीं है। बल्कि यह उनकी प्रसुप्त अवस्था हैं। आधार प्राप्त होते ही ये क्लेश पुनः अस्तित्व मे आ जाते हैं।

हमारे शास्त्रो मे ऐसे अनेक घटनाओ का वर्णन प्राप्त होता है, जो इस बात की पुष्टि करता है कि ये क्लेश आधार प्राप्त कर पुनः प्रकट हो जाते है। तपस्वी साधक भी अपने साधन काल के दौरान इन क्लेशो के जाग्रत होने पर कुछ समय के लिए अपनी साधना से विचलित हुए। विश्वामित्र, नारद, वाल्मीकि आदि अनेक तपस्वी इन क्लेशों के प्रभाव स्वरूप कुछ समय के लिए पद च्युत हुए।

योग मे निरंतर लगा हुआ साधक इन्ही क्लेंशो को ही योग साधना के बल पर तनु कर देता हैं और जिससे इनकी क्रियाशिलता कम हो जाती हैं। इस प्रकार इन क्लेशों का प्रभाव योग साधना में लगे हुए साधक पर अन्य की अपेक्षा कम होता है।

एक क्लेश के प्रभावी होने पर दूसरा क्लेश तनु रहता है जैसे राग और द्वेष दोनो को ही महर्षि ने क्लेश माना है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि, राग के प्रभावी होने पर द्वेष विक्षिन्न या तनु अवस्था मे रहता है।

अविधा के विषय मे महर्षि पतंजलि सूत्र रूप में कहते है–

अविधा क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदारणाम्।

(प.यो.सूत्र 2/4)

अर्थात्, अविधा सभी क्लेशों का क्षेत्र है, ये क्लेश प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन चार अवस्थाओ में रहती हैं।

अविधा को महर्षि ने सभी क्लेशो की जननी के रूप में परिभाषित किया है। यह सभी क्लेशों को प्रभावी स्थिति में लाती है सभी क्लेशों के समाप्त होने पर भी अविधा रूपी क्लेश अस्तित्त्व में बनी रहती है। और ये क्लेश प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार चार अवस्थाओं में रहती है।

फिर महर्षि ने अविधा के स्वरूप को अलग से वर्णन करते हुये सूत्ररूप में व्यक्त किया है।

महर्षि कहते है–

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविधा।

(प.यो.सूत्र 2/5)

अनित्य, अपवित्र, दुःख, तथा अनात्मा में क्रमशः नित्यता, पवित्रता, सुख, एवं आत्मभाव देखना ही अविधा है।

जब महर्षि के इस सूत्र पर विचार करते है तो महर्षि ने स्पष्ट रूप से अविधा को परिभाषित कर साधक को साधना के मार्ग में रहकर योग की प्राप्ति तक समपर्ण के साथ लगे रहने की शिक्षा देते हुए प्रतित होते है। यह अविधा अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्म को ही नित्य, पवित्र, सुख और आत्मपथ मानती है। जिससे कोई भी साधक सरलता से अविधा के भ्रम में आ सकता हैं।

जब हम अपने योग ग्रन्थों का अध्ययन करते है तो हम पाते है कि हमारे ग्रंथो में आत्मा को सत्य माना गया है और सारे संसार को नश्वर कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को स्पष्टरूप से समझाते हुये कहा है कि, अर्जुन इस संसार में सिर्फ आत्मा ही सत्य है और समस्त भूतादिको के शरीर नाशवान है, मरणधर्मा है इनका कोई अस्तित्व नहीं है। ये सभी दुःख की जननी है। फिर भी हम इन्हे सुख का कारण मान लेते हैं। ये ही अविधा है।

अब हम दूसरे क्लेश अस्मिता का अध्ययन करेंगें–

4.3.2 अस्मिता

अस्मिता के स्वरूप को सूत्ररूप में वर्णन करते हुए महर्षि कहते है–

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।

(प.यो.सूत्र 2/6)

दृक शक्ति और दर्शन शक्ति दोनो का एकरूप सा मानना अस्मिता है।

दृकशक्ति अर्थात् द्रष्टा–पुरूष तथा दर्शन–शक्ति अर्थात् मन, बुद्धि चित्त और इन्द्रियां जिन पर दृश्य उभरते हैं, इन दोनों को अभिन्न मानना अस्मिता है। यहां द्रष्टा–पुरूष चेतन है तथा दर्शन–शक्ति मन, बुद्धि, चित्त आदि यहां जड़ है। यह द्रष्टा चेतन अपने को जड़ मन, बुद्धि आदि मान बैठता है। चेतन का जड़ से यही एकत्व का भान ही अस्मिता नामक क्लेश है।

4.3.3 राग

अस्मिता नामक क्लेश के वर्णन के बाद महर्षि ने राग का वर्णन किया है। महर्षि सूत्र रूप मे राग का वर्णन करते हुए कहते है–

सुखानुशयी रागः।

(प.यो.सूत्र 2/7)

अर्थात्, सुख का अनुसरण करने वाला भाव राग नामक क्लेश है।

सुख की प्राप्ति के लिए मन स्वाभाविक रूप से सुख के पीछे लगा रहता है यह सुख की चाह ही राग नामक क्लेश की जननी है। इस प्रकार जिस किसी वस्तु में सुख की प्रतीती होती है, उस वस्तु से लगाव हो जाना राग है। यह सुख उत्पादक वस्तु के प्रति आशक्ति है। जैसे– इद्रियों को स्वादिष्ट लगने वाले व्यंजन के प्रति राग हो जाना है। अनुकूल पदार्थों में सुख की चाह होना तथा उसे सदैव उसी अवस्था में प्राप्त कर भोगनें की इच्छा आसक्ति को जन्म देती हैं यह राग है। इस प्रकार यह राग नामक क्लेश सुख की प्राप्ति की इच्छा के साथ–साथ रहने वाला एक क्लेश है।

अब देखे द्वेष का स्वरूप–

4.3.4 द्वेष

दुःखानुशयी द्वेषः।

(प.यो.सूत्र 2/8)

अर्थात, दुःख का अनुसरण करने वाला भाव द्वेष कहलाता है।

इन्द्रियों में दुख उत्पादक वस्तुओं से दूर भागने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। ऐसी वस्तुओं से मन का दूर भागना या विरोध करना द्वेष नामक क्लेश है। इन दुःख उत्पादक वस्तुओं से घृणा का भाव

मन में आना स्वाभाविक ही होता है। इस प्रकार जिन सांसारिक वस्तुओं से मन को दुःख की प्राप्ति होती है। यह मन उन सभी से विरोध करता है। यही द्वेष नामक क्लेश कहलाता है।

ये राग और द्वेष नामक क्लेश इन्द्रियों और इन्द्रियों के भोगों में सदैव विधमान रहतें है। ये साधना पथ में लगें साधक के दुर्जय शत्रु हैं। साधक को इनसे पार पाना होता है। ये राग और द्वेष इन्द्रियों के विषयों में मिलने वाले अनुकुलता और प्रतिकुलता पर निर्भर करते है यदि अनुकुलता प्राप्त हो गई तो राग और प्रतिकुलता हो गई तो यही राग द्वेष में बदल जाता है। साधक को इन्ही राग और द्वेष नामक क्लेशों से सतर्क रहना है।

अब हम अंतिम क्लेश अभिनिवेश की विवेचना करेंगें। अभिनिवेश को सूत्ररूप में वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते है–

4.3.5 अभिनिवेश

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः।

(प.यो.सूत्र 2/9)

अर्थात्, नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होने वाला मृत्यभय का भाव अभिनिवेश है, जो विद्वान व मूढ़ दोनों में समान रूप से होता है।

यह अज्ञात स्थिति में न पहुंचने का भय है। यह मरने के डर से उत्पन्न होने वाला अभिनिवेश नामक क्लेश है। यह प्राणि के अपने पूर्व की स्थिति के प्रति लगाव का क्लेश है। हम इस संसार को ही अपना मूल निवास स्थान मान बैठे है जबकि वास्तव में यह आत्मा कई शरीरों को छोडकर आज इस वर्तमान शरीर को प्राप्त हुई है। इसी को महात्मा बुद्ध कहते है कि मुझे मेरे पिछले 200 जन्म याद आ गये। कभी मैं चार पैर वाला रहा, कभी बिना हाथ–पैर वाला, तो कभी रेंगनें वाला रहा। इस प्रकार अनेक अन्य साधको के उदाहरण भी हमें प्राप्त होते हैं। वास्तव में यह हमारा वास्तिविक घर नहीं है। वर्तमान अनुकुलता के प्रति लगाव उत्पन्न होने पर और अज्ञानता के कारण ही अभिनिवेश नामक यह क्लेश उत्पन्न होता है। यह अज्ञानता और भय सभी प्राणियों में समान रूप से होता है। चाहे वह प्राणि बहुत विद्वान हो या मूढ़ ही क्यो ना हो।

4.4 सारांश

इस इकाई में बताया गया है कि योग का आरम्भ कहाँ से होता है। साधक को साधना में सफल होने के लिए क्रिया योग की विधियों का पालन आवश्यक है। इसके लिए ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण

समर्पण के साथ मन सहित इन्द्रियों को इष्ट के अनुरूप तपाना (तप) और स्वयं का अध्ययन करने का अभ्यास करना आवश्यक है।

क्रिया योग के अभ्यास से क्लेशों को क्षीण किया जा सकता है क्योंकि क्लेश ही दुःख के मूल कारण हैं। योग में पंचक्लेशों का उल्लेख है– अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश। अविद्या या अज्ञान सभी क्लेशों का आधार है। अनित्य को नित्य, दुःख आदि को सुख समझना अविद्या है। अनात्मा को आत्मा, असत्य को सत्य मानना अविद्या है। मन, बुद्धि अहंकार और आत्मा को अभिन्न मानना अस्मिता है।

सुखोत्पादक वस्तु से प्रेम राग और दुःखत्पादक वस्तु से घृणा द्वेष उत्पन्न होते है। मृत्यु के भय से उत्पन्न दुःख अभिनिवेश है। क्रिया योग से (तप स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान) ये क्लेश क्षीण एवं बलहीन हो जाती है। क्लेशों का सर्वथा नाश अन्तर्ध्यान से होता है। यदि क्लेश रहे तो जन्म मरण चक्र में जीव दीर्घ काल तक रहता है। अत एव बंधन से मुक्ति हेतु यह आवश्यक है कि क्लेश भी समाप्त हों।

4.5 सन्दर्भ ग्रंथ

1. योग सूत्र भाष्य – पतंजलि योग पीठ, हरिद्वार
2. योग दर्शन – डॉ० आर०एम० पाठक
3. योग दर्शन पर चर्चा – डॉ० एच०पी० सिन्हा
4. योग सूत्र भाष्य – स्वामी अड़गड़ानंद महराज
5. पतंजलि योग सूत्र – बी०के०एस० आयंगर

4.6 सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

4.6.1 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. क्रिया योग को समझाते हुए इसके विभिन्न अवयवों पर प्रकाश डालिए?
2. क्लेश किसे कहते हैं? पंच क्लेशो का विस्तृत विववरण देते हुए इसे कैसे क्षीण किया जा सकता है, समझाईयें?

4.6.2 लघुत्तरीय प्रश्न

1. क्रिया योग किसे कहते है?
2. पंच क्लेशों का उल्लेख करिये?
3. दुःखों का मूल कारण क्या–क्या है?
4. अविद्या क्लेश को उदाहरण सहित समझाईयें।

कर्माशय एवं कर्म–विपाक की अवधारणा

इकाई–05

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उददे्श्य

5.2 कर्माशय

5.2.1 कर्माशय का परिणाम

5.3 कर्म–विपाक

5.3.1 कर्म विपाक के निर्धारक तत्व

5.3.2 कर्माशय एवं कर्म विपाक में तुलना समानता

5.4 दृश्यनिरूपण

5.5 दृष्टानिरूपण

5.6 प्रकृति एवं पुरूष संयोग

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.9 सम्बन्धित प्रश्न एवं उत्तर

5.9.1 लघुत्तरीय प्रश्न

5.9.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम योग के महत्वपूर्ण अंग कर्माशय एवं कर्म–विपाक को समझेंगें। योगपथ में योग के पूर्ण प्राप्ति के लिए महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ योगसूत्र में कर्माशय एवं कर्म–विपाक का चित्रण किया है। साथ ही इस इकाई मे ंहमे दृष्टा एवं दृश्य का भी सही स्वरूप देखने एवं समझने को मिलेगा। क्लेशों के प्रभाव के कारण साधक साधना के सही स्थिति में नही पहुच पाता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए ही हमें कर्म एवं कर्माशय को समझने की आवश्यकता होती है। इन क्लेशों के मूल को नष्ट करना भी आवश्यक हैं। इस इकाई के माध्यम से शिक्षार्थियों को योगपथ में प्रगति करने में आवश्यक अंगो की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

जब तक से कर्म एवं उनके बंधन उपस्थित रहेंगें। तब तक एक साधक पूर्ण निवृति को नही प्राप्त कर सकता है। हमें इस कर्म के रहस्य को ही समझने के लिए महर्षि ने कर्म और उसके आशय, क्लेशों और इन क्लेशों का चित्तवृत्तियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। उसको अपने ग्रंथ पतंजलि योगसूत्र में वर्णन करने को प्रयास किया है।

आशा है इस इकाई के माध्यम से हमें कर्माशय और कर्मविपाक के साथ–साथ दृष्टा और दृष्य को भी समझने में मदद प्राप्त होगी।

5.1 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों को कर्म, कर्माशय एवं कर्म विपाक के सही स्वरूप को समझाना है।
- दृष्टा एवं दृश्य के सही स्थिति को जानने में सहयोग करना है।

- योग दर्शन के आलोक में प्रकृति और पुरूष के संयोग सम्बन्धी अवधारणाओं को समझने का प्रयास किया जायेगा।
- इस इकाई के द्वारा हम योग के विभिन्न सहायक अंगो को भी समझने का प्रयास करेंगे।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य कर्म के सही स्वरूप को समझना भी है।

5.2 कर्माशय

कर्माशय जैसा की स्पष्ट हो रहा है यह दो शब्दो कर्म और आशय से बना है। जब हम पतंजलि योग सूत्र का अध्ययन करते है। तो वहा पहले पाद समाधि पाद के चौबिसवें सूत्र में इन दोनो ही शब्दो को देखने में मिलता है। इस सूत्र में ईश्वर की विशेषता का वर्णन करते हुए महर्षि कहतें है कि वह ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और आशय इन चारों से बिल्कुल असंग रहता है।

क्लेश को महर्षि ने पांच भागो में बांटा हैं और इसको सभी दुःखो का कारण माना गया है। इसका विस्तार से वर्णन हम आगे अध्ययन करेंगे।

कर्म को महर्षि ने चार भागों में बांटा है। इन कर्मो का जो परिणाम है, वह विपाक है और इन कर्मो से मनुष्य के कर्म–संस्कार उत्पन्न होते है। इन कर्म–संस्कार से वासना बढती है यही कर्मो का आशय है। पूर्व के किये हुए कर्मो का फल कर्माशय के रूप में संरक्षित रहता है।

यह मीमांसा दर्शन के अदृष्ट के समान है। यह शुभ अथवा अशुभ दोनों प्रकार कर्मो के फल कर्माशय में सुरक्षित रहता है।

महर्षि पतंजलि ने कर्माशय को पतंजलि योग सूत्र में परिभाषित करते हुए कहा है –

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।

(प.यो.सूत्र 2/12)

क्लेश का मूल विद्यमान होने पर कर्माशय के रूप में दृष्ट व अदृष्ट दोनों प्रकार के कर्म फल भोगने योग्य होते है।

यहाँ पर, दृष्ट वर्तमान जन्म के और अदृष्ट भविष्य में होने वाले जन्मों के कर्म फल हैं। इन्हे ही दृष्टवेदनीय और अदृष्टवेदनीय के रूप में भी जाना जाता है। कर्माशय को ही कर्म की वासना के रूप में भी जाना जाता हैं।

वास्तव में ये कर्माशय पुण्य या पाप रूप में होते है। इसे लौकिक भाषा में पुण्य का घड़ा या पाप का घड़ा भी कहा जाता है। ये कर्म वस्तुतः पुण्य कर्म और पाप कर्म से मिश्रित होने कारण तीनों गुणो सत्, रज और तमो गुण प्रधान होते है।

कर्माशय को ही कर्म–संस्कारों के नाम से भी जाना जाता है। इन्ही संस्कारों के कारण जन्म और मरण का बंधन बना रहता हैं।

5.2.1 कर्माशय का परिणाम

इन कर्म–संस्कारों के कारण उत्पन्न होने वाले भोगो और उनके कैसे प्रभाव होते है? इसका चित्रण महर्षि ने अपने अगले सूत्र में करते हुए कहा है–

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

(प.यो.सूत्र 2/13)

अर्थात्, क्लेश जो मूल है जब तक यह विद्यमान रहता है। तब तक तद्विपाकः उस कर्म संस्कार के संग्रह (विपाक) के कारण पुनर्जन्म, आयु और भोग होता ही रहता है।

कर्माशय सदैव क्लेश के मूल में रहता है जिसके परिणाम स्वरूप इसका कर्माशय का फल तुरंत प्राप्त हो जाता है। इन क्लेंशो के समूल नष्ट हुए कर्माशय के परिणाम से मुक्ति नही मिल पाती है। अतः क्लेशों के मूल को ही नष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

किसी कार्य के होने में इस कार्य का कारण अवश्य ही होता है। इसी के परिणाम स्वरूप जाति, आयु और भोग परिणाम में प्राप्त होता है। इसी कर्म परिणाम को कर्म विपाक भी कहा जाता है–

विपाक के कारण ही जन्म, पुनर्जन्म, जीवन की आयु एवं अच्छे–बुरे भोग जीवन में आते जाते रहते है। वास्तव में इसी कर्म–विपाक के फलस्वरूप ही जीव को अलग–अलग योनियों मे पुनर्जन्म, आयु और भोंग भोगना पडता है।

इसी पुनर्जन्म, आयु और भोग को स्वामी विवेकानन्द जी ने कर्म के त्रिविध परिणाम के रूप में निरूपित किया है। यही त्रिविध परिणाम दृष्ट(वर्तमान) अथवा अदृष्ट(भौतिक) दो प्रकार के होते है।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।

(प.यो.सूत्र 2/14)

अर्थात्, पुण्य कर्मो के कारण प्राप्त होने वाला पुनर्जन्म, आयु व भोग सुखदायी फल देने वाला और पापकर्मो के कारण प्राप्त होने वाला पुनर्जन्म, आयु एवं भोग दुःखदायी फल देने वाले होते हैं।

इस प्रकार मनुष्य के कर्मों के अनुसार ही वे कभी हर्ष को प्राप्त करता है और कभी शोक को प्राप्त करता है। दोनो ही अवस्थायें मनुष्य के स्वयं के कर्मों पर निर्भर करती है। मनुष्य स्वयं के उत्कृष्ट कर्मों के द्वारा ही स्वयं को देवत्व तक की अवस्था तक पहुचां कर सुखलाभ प्राप्त कर सकता है या फिर निकृष्ट कर्मों के द्वारा स्वयं को दुःख की अवस्था तक पहुचां सकता है। हमारे ग्रंथो में यहां तक कहा गया है कि विधाता के लिखे हुए लेख को भी मनुष्य अपने कर्मों के बल पर बदल सकता है।

आशय यह है कि, कर्माशय तभी बनते हैं जब वे क्लेशों से प्रेरित होकर किये जाते हैं। अस्मिता के कारण हम अपने शरीर को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेते हैं। इस कारण शरीर की इच्छा (राग) और अनिच्छा (द्वेष) को पूरा करने में जीवन व्यतीत करने लगते हैं। यही सकाम कर्म है। इसका फल कर्मकर्ता पर निर्भर नहीं होता है।

यह कर्म की भावना, कर्म के लिए प्रयास एवं हमारे पूर्व के पाप–पुण्य आदि देखकर ईश्वर द्वारा एक मिला–जुला विपाक देता है– जन्म/पुनर्जन्म के रूप में, आयु एवं भोग के रूप में। जब तक कर्म का फल नहीं मिलता तब तक कर्म का फल कर्माशय के रूप में संग्रहित रहता है।

5.3 कर्म–विपाक

क्लेशों से प्रेरित होकर कर्म करने से कर्म–विपाक बनते है। उपर्युक्तानुसार कहा जा सकता है कि कर्म का फल देने वाला विपाक होता है।

विपाक से पूर्व के कर्म फल का कर्माशय के रूप में संचय होता रहता है। यही संचित फल कर्माशय से कर्मफल में बदल जाता हैं। जब कर्माशय से कर्मफल मिलता है तो उसे विपाक कहा जाता है। कर्म विपाक स्वयं फल नहीं होते बल्कि वे फल देने वाले होते हैं।

परिणामतः हम कह सकते हैं कि शुभ और अशुभ कर्म से होने वाले परिणामों को कर्म विपाक कहते है।

5.3.1 कर्म विपाक के निर्धारक तत्व

योग दर्शन के अनुसार कर्म विपाक या कर्म फल का निर्धारण निम्न चार तत्वों के आधार पर किया जाता है। कर्मभावना, प्रयास, पाप तथा पुण्य। किसी भी कर्म के करने के पीछे कर्त्ता का उद्देश्य क्या है? कर्त्ता द्वारा उस कर्म को करने पीछे क्या भाव अथवा मन्तव्य है रखा जा रहा है? – यह कर्म भावना है।

किसी कर्म को करने हेतु जो प्रयास, श्रम, प्रतिबद्धता इत्यादि किया जा रहा है– यह प्रयास कहा जाता है। कोई कर्म नैतिक साधनों से करने पर पुण्य और अनैतिक साधनों से करने पर पाप होता है। उक्त कर्मो के कारण ये कर्म विपाक ही जन्म या पुनर्जन्म, आयु और भोग का निर्धारण करते हैं।

पुण्य कर्म के परिणाम स्वरूप जो जन्म या पुनर्जन्म प्राप्त होता है वह सुखदायी होगा। जीवन दीर्घ होगा और भोग उत्तम एवं आनंददायी होगी। पाप कर्म के परिणाम स्वरूप जो जन्म या पुनर्जन्म प्राप्त होता है वह निम्नतर एवं कष्टप्रद होगा। साथ ही जीवन की आयु कमतर या रोगप्रद के साथ–साथ सुखभोग का अभाव भी होगा।

परन्तु यथार्थ ज्ञान स्वमेव अक्लिष्ट है और उससे कोई कर्म फल नहीं बनाता। इस प्रकार यह कर्म विपाक शून्य हो जाता है। जैसे– परमात्मा को जानने के लिए ज्ञान ग्रहण करना। क्योंकि परमात्मा की कामना एवं ज्ञान की कामना फल देने वाली नही है। क्योंकि ये निष्काम हैं।

5.3.2 कर्माशय एवं कर्म विपाक में तुलना समानता

1. दोनों कर्म से सम्बन्धित हैं।
2. दोनों का सम्बन्ध शुभ एवं अशुभ कर्मों से है।

अन्तर	
कर्माशय	**कर्म विपाक**
1. वर्तमान एवं अतीत के कर्म संस्कार जहाँ पर संरक्षित होते है, वे कर्माशय कहलाते है।	1. पूर्व एवं वर्तमान कर्म के फल कर्म–विपाक कहलाते है।
2. यह कर्म विपाक से पूर्व की स्थिति है।	2. यह कर्माशय के बाद की स्थिति है।
3. इसका सम्बन्ध शुभ या अशुभ कर्म से है।	3. इसका सम्बन्ध पाप–पुण्य के प्रभाव से उत्पन्न फल से है।

5.4 दृश्यनिरूपण

पतंजलि योग सूत्र में दृष्टा एवं दृश्य दो शब्द देखने को मिलते है। महर्षि पतंजलि ने द्रष्टा एवं दृश्य दोनो का वर्णन किया हैं। अतः हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि द्रष्टा और दृश्य को महर्षि ने कैसे निरूपित किया है। इन्हे हम अलग–अलग जानेंगे–

दृश्यनिरूपण के विषय में महर्षि कहते है–

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(प.यो.सूत्र 2/18)

अर्थात्, प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका आचरण है। भूत एवं इन्द्रियां जिसका प्रकट रूप हैं। जिसका उददेश्य पुरूष के लिए, भोग एवं मोक्ष का सम्पादन करना है, वही दृश्य है।

सामान्यतः प्रकृति को ही हम दृश्य के रूप में मान्यता देते है। प्रकृति को ही हम संसार के रूप में जानते है लेकिन महर्षि ने किसे दृश्य के रूप में संबोधित किया है? यह जानना आवश्यक है।

प्रकृति में क्रिया का अर्थ सृष्टि विकास एवं स्थिति का अर्थ प्रकृति के साम्यावस्था में रहने से है। पंचभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, एवं वायु एवं पाँच कर्मेन्द्रियां एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियां और मन! ये ही दृश्य के प्रकट रूप है। प्रकृति पुरूष हेतु भोग्यार्थ होने पर बंधनकारी हो जाता है एवं मोक्षार्थ होने पर यही प्रकृति प्रयोजनकारी हो जाती है।

यह सारी सृष्टि या जगत प्रकृति का प्रकट रूप है। ये प्रकृति के तीनों गुणों अर्थात् सत्, रज और तम से मिलकर बने हैं। इन्हीं से पंचतन्मात्राएं, पंचभूतों और इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। यही प्रकृति के जगत के रूप में या सृष्टि के रूप में प्रकट होना है। यह पुरूष को मोक्ष प्राप्त कराने और अज्ञान रूपी बंधन से मुक्त कराने हेतु प्रकट होती है।

क्योकि महर्षि ने दृश्य को, प्रकाश, क्रिया और स्थिति के अनुरूप वर्णित किया है। इसलिए हमें इन्हे समझना जरूरी है। प्रकाश को दृश्य कैसे कहा? तो प्रकाश ईश्वर का गुण है और इस ईश्वरीय गुण को प्राप्त करने के लिए उसके मार्ग पर चलना ही क्रिया है योग के मार्ग पर क्रियाशील होना और इस मार्ग पर चलते चलते उस ईश्वर की स्थिति या जिसको हम मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य आदि नामों से जानते है। उसे प्राप्त करना ही स्थिति को प्राप्त करना है।

इस प्रकार यह दृश्य ही पुरूष के लिए भोग और मुक्ति दोनो का ही प्रबंध करती है। यहां भोग से तात्पर्य सांसारिक भोग नही है। बल्कि ईश्वर से संबंध स्थापित कराने में सहयोग करना है। इस प्रकार की व्यवस्था प्रदान करना ही दृश्य का प्रयोजन है। ईश्वर के तरफ ले जाने वाले सभी साधनो का भोग स्वयं उस ईश्वर को प्रिय हैं वही उसका भोग करता है।

इस प्रकार साधक के लिए योग के साधनो का भली प्रकार व्यवस्था करना और उस साधन के द्वारा अंत में मुक्ति तक की दूरी तय करा देना ही दृश्य की विशेषता है। यही इसका प्रयोजन हैं।

इस प्रकार महर्षि ने वास्तव में दृश्य को प्रकाश स्वरूप माना है और उसे क्रिया करके प्राप्त करने पर बल दिया है और उससे मिलने वाली मुक्ति का प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दी हैं।

5.5 दृष्टानिरूपण

यह जगत दृश्य है। इसका दृष्टा आत्मा है।

दृष्टा का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहतें है–

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।

(प.यो.सूत्र 2/20)

अर्थात, दृष्टा चेतन मात्र ज्ञान स्वरूप है और स्वभाव से यह सर्वथा शुद्ध है। फिर भी यह बुद्धिवृत्ति के अनुरूप दृश्य प्रकृति को देखने वाला दृष्टा है।

यहाँ यह जानना आवश्यक हो जाता है जैसा साधक की बुद्धि की वृत्ति होगी वैसी उसकी वृत्ति हो जाती है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते है कि, आत्मा जो दृष्टा है प्रकृति को अपनी बुद्धि वृत्ति के अनुरूप ढालकर वैसा ही स्वरूप धारण कर लेती है।

जैसे– आँख द्वारा एक गाय को देखा गया। बृद्धि में 'गाय' का एक मानसिक चित्र बना और इस चित्र के अनुरूप आत्मा की चेतना भी बन गई इस प्रकार गाय का ज्ञान हुआ।

यहाँ पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, दृष्टा देखकर क्या करता है?

इस पर महर्षि कहते है–

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा।

(प.यो.सूत्र 2/21)

अर्थात्, उस दृश्य का स्वरूप द्रष्टा आत्मा के ही लिए है। यह दृश्य ही, द्रष्टा के लिए भोग एवं अपवर्ग (मोक्ष) प्रदान करता है। इस प्रकार यह दृश्य उस द्रष्टा के लिए ही कार्य करता है।

अब महर्षि कहते है–

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।

(प.यो.सूत्र 2/22)

मोक्ष प्राप्त पुरूष के लिए यह दृश्यरूप जगत नष्ट नहीं होता बल्कि उससे भिन्न अन्य पुरूषों के मोक्ष प्रयोजनार्थ यह जगत साधारण बना रहना है। मुक्त पुरूष प्रकृति के बंधन में नहीं फंसेगा न उसे अन्य कोई प्रयोजन शेष ही है।

वस्तुतः इस स्थिति को प्राप्त हुआ वह पुरूष अपने ही आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अपने ही आत्मा में रमण करता है। यह आत्मा शुद्ध है विशुद्ध है पर ज्ञान को प्राप्त कराने वाली है। परन्तु वह देख नहीं सकती। देखने का कार्य बुद्धि का है।

आत्मा का बुद्धि से सम्पर्क होने पर आत्मा वही देखती है जो बुद्धि उसे दिखाती है। बुद्धि प्रकृति की ही उत्पत्ति है। इसलिए जड़ है। आत्मा शुद्ध चेतन है। जब आत्मा अविद्या के कारण प्रकृति के स्वभाव को अपना स्वभाव मान लेती है तो यही बंधन है और जब आत्मा को प्रकृति से भिन्नता का ज्ञान होता है तो वही मोक्ष है।

जब कोई साधक साधना के उच्च अवस्था को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता हैं। तो उसके लिए दृश्य का कोई प्रयोजन नही रह जाता है। लेकिन उस मोक्ष की अवस्था को प्राप्त हुआ साधक साधारण जन के लिए उस दृश्य का उपयोग उनके कल्याण के लिए करता है।

5.6 प्रकृति एवं पुरूष संयोग

प्रकृति एवं पुरूष का ही दूसरा नाम दृश्य और दृष्टा है। महर्षि ने इनके संयोग का वर्णन पतंजलि योगसूत्र मे किया है।

महर्षि सूत्र के रूप में वर्णन करते हुए कहते है–

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः।

(प.यो.सूत्र 2/23)

स्वशक्ति अर्थात् स्वयं की शक्ति इसे ही दृश्य और स्वामिशक्ति अर्थात् पुरूष इन दोनो के मिलन से प्राप्त स्वरूप की उपलब्धि को ही संयोग कहा जाता है।

अर्थात् जिससे दृश्य तथा दृष्टा की जो उपलब्धि होती है, वह संयोग विशेष ही प्रकृति और पुरूष का संयोग कहलाता है।

इस संयोग से पुरुष स्वयं को प्रकृति से अभिन्न समझता है। फलतः प्रकृति से महत या बुद्धि उत्पन्न होता है, इससे अहंकार और पंच तन्मात्राऐ, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कामेन्द्रियां एवं मन की उत्पत्ति होती है, पंच तन्मात्राओं से पंच तत्वों (जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, आकाश) की उत्पत्ति होती है।

पुरुष यहीं से बंधन की अवस्था में पड़ जाता है। बंधन से मुक्ति हेतु पुरुष को अष्टांग योग के नियमों के पालन करने होते है।

यह संयोग क्यो होता है? इस पर महर्षि कहते है–

तस्य हेतुरविधा।

(प.यो.सूत्र 2/24)

अर्थात्, उस संयोग का कारण अविधा है।

वस्तुतः जब तक अविधा है तब तक संयोग भी उपस्थित रहेगा। जब अविधा मिट जाती है तब संयोग भी मिट जाता है। इस प्रकार अविधा ही संयोग कारण है और अविधा ही संयोग के मिटने का भी कारण है। अगर अविधा ना होती तो द्रष्टा की भी आवश्यता ना होती।

द्रष्टा ही दृश्य का वर्णन साधक के ह्रदय में करता है। दृश्य से साधक को अपवर्ग का लाभ प्राप्त होता है। इस अवस्था को प्राप्त साधक को न तो दृश्य की आवश्यकता पडती है और ना ही संयोग की।

योग के मतानुसार प्रकृति तथा पुरूष दोनो ही अलग–अलग तत्त्व है। लेकिन यह प्रकृति और पुरूष का संयोग ही इस संसार के सभी जड़ और चेतनयुक्त सृष्टि के निर्माण का कारण है। प्रकृति को जड़ माना जाता है तथा यह तीन गुणों सत्, रज् तथा तम् से निर्मित हैं। इसी प्रकृति तत्त्व से जब चेतन युक्त पुरूष का संयोग होता है। तब सृष्टि का निर्माण होता है। इसी प्रकृति को दृश्य तथा पुरूष को दृष्टा कहा जाता हैं।

इस प्रकार प्रकृति और पुरूष का संयोग होने पर ही सृष्टि का निर्माण होता है और जब तक साधक योग के सही विधि को नहीं पालन करता है। तब तक वह प्रकृति के इस भौतिकता में ही सत्त्य को खोजता रहता है। साधक को योग की साधना के द्वारा ही उस लक्ष्य की प्राप्ति होती है। इसलिए एक साधक को उस प्रकृति से मुक्ति और कैवल्य की प्राप्ति हेतु सही साधना को जान लेना और उस पर दृढ़ता पुर्वक चलने की आवश्यकता रहती है।

5.7 सारांश

पूर्व में किये गये कर्मों का फल जहाँ संरक्षित रहते हैं, उसे कर्माशय कहते हैं।

इसी प्रकार कर्म का फल जो मिलने लगता है। कर्म विपाक कहलाता है। कर्माशय में कर्मफल संचित रहते है। जब कर्मफल मिलने लगते है तो वही कर्म विपाक कहें जाते हैं।

कर्माशय एवं कर्मविपाक दोनों कर्मफल से सम्बन्धित हैं। जहाँ कर्माशय कर्मफल संरक्षित रखता है। वहीं कर्मफल मिलने पर उसे कर्मविपाक कहा जाता है।

प्रकृति ही दृश्य है। प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव हैं। भूत एवं इन्द्रियाँ जिसका प्रकट रूप है। पुरुष के लिए भोग एवं मोक्ष का सम्पादन करना जिसका प्रयोजन हो, वही दृश्य है।

चेतन मात्र ज्ञान स्वरूप, दृष्टा स्वरूप आत्मा जो शुद्ध है, वह दृष्टा है। दृष्टा का दृश्य से तादात्म्य भाव होना बंधन और दृष्टा का दृश्य से अलगाव होना मोक्ष है।

5.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. योग दर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी अड़गड़ानंद महराज
2. योग सूत्र भाष्य – पतंजलि योग पीठ, हरिद्वार
3. सांरथ योग दर्शन – डॉ० आर०एम० पाठक
4. योग दर्शन – राजवीर शास्त्री

5.9 सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

5.9.1 लघुत्तरीय प्रश्न

1. कर्माशय किसे कहते है?
2. कर्मविपाक एवं कर्माशय के समानता एवं अंतरों को स्पष्ट कीजिए।

3. दृश्य स्वरूप का विवेचन कीजिए।

4. दृष्ट स्वरूप का विवेचन कीजिए।

5.9.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रकृति – पुरुष संयोग पर एक निबंध लिखें।

2. दृष्टा – दृश्य संयोग की अवधारणा का विवेचन कीजिए।

अष्टांग योग

इकाई 06– बहिरंग साधना

(यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार की अवधारणा)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 यम

- 6.2.1 अहिंसा
- 6.2.2 सत्य
- 6.2.3 अस्तेय
- 6.2.4 ब्रह्मचर्य
- 6.2.5 अपरिग्रह

6.3 नियम

- 6.3.1 शौच
- 6.3.2 संतोष
- 6.3.3 तप
- 6.3.4 स्वाध्याय
- 6.3.5 ईश्वर प्रणिधान

6.4 आसन

6.5 प्राणायाम

6.6 प्रत्याहार

6.7 सारांश

6.8 संदर्भ ग्रंथ

6.9 संबंधित प्रश्न

6.9.1 दीर्घ प्रश्न

6.9.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

6.9.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.0 उद्देष्य

- इस इकाई के अघ्ययन से हम अष्टांग योग के बहिरंग साघन को समझ पायेंगे।
- यम एवं नियम के सभी अंगो को अलग–अलग समझेंगें।
- आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार को पूर्ण रूप से समझकर उनकी विशेषताओ को अलग–अलग समझेंगे।
- अष्टांग योग के सही स्वरूप को समझ पायेंगें।
- वर्तमान में अष्टांग योग ही सबसे अधिक प्रचलित है, अतः इसे समझना आवश्यक है।

6.1 प्रस्तावना

अष्टांग जैसा की नाम से ही अर्थ प्रतीत हो रहा है आठ अंग। ये आठ अंग क्या है? जब हम पतंजलि योग सूत्र का अध्ययन करते है तो वहा पर हमे पहली बार अष्टांग शब्द का प्रयोग हमें प्राप्त होता है। महर्षि पतंजलि के द्वारा बताये अष्टांग शब्द के साथ योग शब्द को जोड़ने पर हमें अष्टांग योग शब्द की प्राप्ति होती है।

इस अष्टांग योग को सर्वसाधारण जन समुदाय से लेकर योग में विशेष रुचि रखने वाले साधक जन भी आज पालन करने का प्रयास करते है। पतंजलि योगसूत्र योग विद्या की बहुत ही प्राचीन एवं

प्रसिद्ध ग्रंथ है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित यह पतंजलि योगसूत्र ही वस्तुतः अष्टांग योग के प्रसिद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारण है।

अतः वास्तव में महर्षि पतंजलि को ही विशेष रूप से अष्टांग योग को सर्व साधारण के सामने लाने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

महर्षि ने इस अष्टांग योग के माध्यम से योग साधकों के साथ–साथ जन साधारण को भी योग–पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते है। अष्टांग योग, योग के साधनो मे से एक बहुत ही सरलतम पथ है। जिससे जन सामान्य से लेकर एक उच्च अवस्था में विचरण करने वाले साधक को भी लाभ प्राप्त होता है।

अष्टांग योग जैसा की नाम से ही दृष्टव्य है। इसमें योग के आठ अंग है जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के नाम से जाने जाते है। इसी अष्टांग योग को महर्षि सूत्ररूप में लिखते हुए कहते है–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधरणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ.गानि।

(प.यो.सूत्र 2/29)

अर्थात्, यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान और समाधि ये आठ अंग है।

वर्तमान परिदृश्य मे देखा जाए तो हम पाते है कि, योग के आठ अंगो में से आसन, प्राणायाम और ध्यान को सामान्य जनमानस में अन्य योग के साधनो की अपेक्षा बहुत अधिक प्रचार–प्रसार है।

अब हम इन आठों साधनों का अलग–अलग विवेचना करेंगें–

6.2 यम

महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ पतंजलि योग सूत्र में अष्टांग योग के पहले साधन के रूप में यम को स्वीकार करते हुये यम का वर्णन सूत्र रूप किया।

महर्षि कहते है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रम्हचर्यापरिग्रहा यमाः।

(प.यो.सूत्र 2/30)

अर्थात्, अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम है।

महर्षि पतंजलि ने सूत्ररूप में यम का वर्णन करते हुये यम के पांच अंगों का वर्णन किया है और उसके बाद उनका अलग–अलग विवरण भी सूत्र के रूप में किया है। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह ये पांच अंग आते है। जो सामान्य तौर पर किसी व्यक्ति विशेष के जीवन से जुड़ें हुए प्रतित होते है। हम यह भी कह सकते है कि ये यम जनसामान्य से लेकर योग में पूरी तरह से डूबें हुए साधक के लिए तक उनके व्यक्तिगत विकास के तौर पर दिखलाई पड़ता है।

इसी प्रकार यम के अन्य अंग सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह ये भी किसी भी योग साधक और सामान्य जनमानस के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित है और उन्हे प्रभावित करने की स्थिति में होती है।

अतः हम सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि, यम किसी साधक या सामान्य जन के व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन लाने का एक मार्ग है।

अब हम इन पाँचों अंगो को अलग–अलग विवेचना करेंगे –

6.2.1 अहिंसा

यम का प्रथम अंग अहिंसा है जिसका हमें पतंजलि योग सूत्र में वर्णन प्राप्त होता है।

महर्षि पतंजलि अहिंसा को सूत्र रूप में परिभाषित करते हुये वर्णन करते है–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

(प.यो.सूत्र 2/35)

अर्थात्– अहिंसा में प्रतिष्ठित साधक के आस–पास स्थित सभी प्राणी आपस में वैर त्याग देते है।

सामान्य तौर पर अहिंसा का अर्थ किसी को न मारने से, किसी को न सताने से, किसी के भी प्रति हिंसा न करने से लिया जाता है।

लेकिन जब हम महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित सूत्र पर विचार करते है तो हम पाते है कि अहिंसा का प्रभाव क्या है तो किसी साधक के आस–पास स्थित सभी प्राणियों का आपस में वैर–त्यागने की

भावना से है। सभी प्राणी आपस में वैर त्याग कर प्रेम–पूर्वक निवास करने लगते है। यह अहिंसा की उच्चतम् अवस्था की प्राप्ति है।

यहाँ पर ऐसा प्रतित हो रहा है मानो महर्षि ने विशेष रूप से किसी साधक की साधना की उच्च अवस्था को सूत्र रूप में प्रदर्शित करनें का प्रयास किया है। जब साधक योग पथ पर अग्रेसर होते हुयें यम के परिक्षेत्र में प्रवेश करता हैं तो प्रथम उपलब्धि उस साधक को अहिंसा की अवस्था की प्राप्ति ही होती है। इसी को बल प्रदान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी दिखते है–

जब भगवान श्री राम वनवास काल में विचरण करते हुए जब चित्रकूट पहुँचते है तो बाबा तुलसी ने रामचरित मानव में लिखते हुये कहा है–

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा।

फिरत अहेर राम छबि देखी। होंहि मुदित मृग बृंद बिसेषी।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड /137/01)

अर्थात्– भगवान राम को देखकर वन में रहने वालें हाथी, सिंह, बंदर, सुअर, हिरन आदि पशु अपना वैर छोड़कर साथ–साथ विचरने लगते है। पशुओं का समूह विशेष आनंद को भी प्राप्त होता है।

इस प्रकार अनेक जगह अहिंसा का वर्णन हम इस प्रकार पाते है कि, अहिंसा एक ऐसी स्थिति है जिसमें अहिंसा साधक को स्वयं के साथ–साथ समाज में भी हिंसा के भाव से मुक्त होने की स्वतः लाभ प्राप्त हो जाता है।

नोटः वास्तव में अहिंसा एक योग साधना का अंग है जिसकी वास्तविक स्थिति योग साधना में लगे हुए साधक को ही उसके हृदय के अंतराल में प्राप्त होती है।

अब हम यम के दुसरे अंग सत्य की विवेचना करेंगें–

6.2.2 सत्य

सत्य के विषय में हम सभी अपने बाल्यावस्था से ही सुनते चले आ रहे है। सत्य के विषय में हमारे मस्तिष्क में अनेक धारणा पहले से बनी हुई है। हम सभी अवश्य ही सुने पढ़े अथवा सुने होंगे कि, सदैव सत्य बोले। सत्य कभी पराजित नहीं होता। सत्य का कभी विनाश नही होता इत्यादि–इत्यादि

अनेक मत हमने सुन रखें होगें और जिस कारण हमारे मन सत्य को लेकर स्वाभाविक रूप से कुछ ना कुछ धारणा अवश्य ही बन गया होगा।

जब हम महर्षि पतंजलि कृत वर्णित योगदर्शन में सत्य के विषय में वर्णित सूत्र का अध्ययन करते है तो हमें प्रथम पाद में ही सूत्र प्राप्त होता है–

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वं।

(प.यो.सूत्र 2/36)

अर्थात्, सत्य में प्रतिष्ठित होने पर क्रिया के फल का आश्रय प्राप्त हो जाता है।

जब हम अपने आर्ष ग्रंथो पर नजर डालते है। तो सत्य के विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि केवल परमतत्व परमात्मा ही सत्य है। अनेक अन्य ग्रंथो जैसे वेद, उपनिषद, पुराण आदि में भी परमात्मा को ही सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है और अन्य सभी को मिथ्या कहा गया है। इसी विचार का समर्थन हमें रामचरितमानस में भी प्राप्त है।

जब भगवान शिव माता पार्वती से सत्य और असत्य का वर्णन करते हुये कहते है–

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।

सत् हरि भजन जगत् सब सपना।।

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड)

अर्थात– "हे उमा, मैं अपना अनुभव बता रहा हूँ कि इस संसार में सिर्फ हरि और हरि का भजन ही सत्य है। अन्य सभी वस्तुयें नश्वर है।"

इस प्रकार सत्य सिर्फ परमात्मा है और महर्षि के अनुसार, साधक जब साधना पथ पर निरंतर लगा रहता है। तो वह साधक उस सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप साधक को उसके साधना का फल प्राप्त होने लगता है। इसी को महर्षि ने सूत्ररूप में व्यक्त करते हुए कहते है कि, सत्य में प्रतिष्ठित होने पर साधक को उसके क्रिया का फल प्राप्त हो जाता है।

सत्याचरण के क्रिया का फल है, परमात्मा। इस प्रकार एक साधक को परमात्मा रूपी फल का आश्रय प्राप्त हो जाता है।

6.2.3 अस्तेय

अब हम यम के तिसरे अंग अस्तेय की विवेचना करेंगें–

अस्तेय का सामान्य अर्थ है "चोरी न करना" महर्षि ने पतंजलि योग सूत्र में अस्तेय को परिभाषित करते हुये लिखा है–

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

(प.यो.सूत्र 2/37)

अर्थात् – अस्तेय में प्रतिष्ठित होने पर सभी रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।

यहाँ यह समझने की आवश्यकता है कि, पतंजलि योग ग्रंथ का एक–एक सूत्र योग पथ में अग्रेसर योग के पथिक को ध्यान में रखते हुयें महर्षि ने वर्णित किया है। इस प्रकार जब एक साधक योग पथ पर अग्रेसर है तो उसे रत्नो से क्या प्रयोजन और उसे किस प्रकार के रत्नों की आवश्यकता होगी?

एक साधक जो एकान्त शान्त स्थल पर साधना में लगा हुआ है उसे सोने, चाँदी, हीरे, मोती आदि जैसे भौतिक रत्नों की क्या आवश्यकता है? अगर इसे हम समझने का प्रयास करें तो हम पातें है कि एक साधक के वास्तविक रत्न विवेक, वैराग्य, इन्द्रिय संयम, ज्ञान की प्राप्ति आदि अनेक विभूतियाँ होती है। ये ही उस साधक के प्रमुख रत्न होते है। इन्ही साधनो का उपयोग कर साधक योग की साधना में आने वाले विघ्नो पर विजय प्राप्त कर उत्तरोत्तर विकास करता हुआ। योग के अंतिम लक्ष्य समाधि की अवस्था को भी भेद जाता है और स्वयं में मोक्ष स्थिति को प्राप्त कर जाता हैं।

इस प्रकार अस्तेय में प्रतिष्ठित साधक को विवेक, वैराग्य, शम, दम, ज्ञान आदि रत्नों की प्राप्ति हो जाती है। इन्ही के माध्यम से साधक योग साधना में सफलता प्राप्त पर करता है।

6.2.4 ब्रह्मचर्य

यम के चौथे अंग के रूप में ब्रह्मचर्य को माना गया है।

महर्षि पतंजलि ने ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुयें सूत्र दिया है–

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

(प.यो.सूत्र 2/38)

अर्थात्– ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर सामर्थ्य लाभ की प्राप्ति होती है।

जब हम पतंजलि योगसूत्र के इस सूत्र को समझने का प्रयास करते है। तब हम पाते है कि महर्षि पतंजलि ने यहाँ एक साधक की साधना के द्वारा प्राप्त सामर्थ्य की स्थिति का वर्णन कर रहें है। एक साधक अपनी साधना में उत्तरोत्तर विकास करते हुयें इस सामर्थ्य की प्राप्ति कर लेता है। जहाँ वह ब्रह्म के साथ विचरण करने उनके जैसा आचरण करने में सक्षम हो जाता है। कहा भी जाता है "ब्रह्म सः आचरण तत् ब्रह्मचारी।"

जो ब्रह्म के जैसा आचरण करें वह ब्रह्मचारी।

हमारे ग्रंथों में वर्णन है कि, ब्रह्म अनंत है और उस अनंत के साथ जो विचरण करें वही ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य को सिर्फ जननेन्द्रिय संयम दायरे में संकुचित कर हम ब्रह्मचर्य के वास्तविक अर्थ तक नहीं पहुँच सकते है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते है कि, जो हठपूर्वक इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकने का प्रयास करता है। लेकिन मन से विषयों में विचरता रहता है और उनका चिंतन करता रहता है वह दम्भ का आचरण करने वाला दम्भाचारी होता है।

पांचों ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों से समेटकर इष्ट के अनुरूप ढालना ही वास्तविक इन्द्रिय संयम है और यही विशुद्ध ब्रह्मचर्य हैं। इस अवस्था को प्राप्त साधक का योग स्वाभाविक स्थिति में ही होने लगता है। जिससे वह सहज ही ब्रह्मचर्य का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि, साधक योग की साधना में आने वाले विघ्नों से विचलित नहीं होता है और उन पर विजय प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार एक साधक को मन सहित सकल इन्द्रियों का संयम करना होता है। बिना सकलेन्द्रिय संयम के ब्रह्मचर्य से प्राप्त होने वाले सामर्थ्य का लाभ नहीं प्राप्त हो पाता हैं।

6.2.5 अपरिग्रह

अपरिग्रह का सामान्य अर्थ आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना है।

जब हम महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन में अपरिग्रह का अध्ययन करते है तो हम सूत्र रूप में पाते है–

"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।

(प.यो.सूत्र 2/39)

अर्थात्– अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाने पर पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

पतंजलि योगसूत्र के इस सूत्र के माध्यम से हमें यह ज्ञात होता है कि, वास्तव में अपरिग्रह साधना की एक अवस्था है जहाँ पर एक साधक साधना के जरिये पूर्वजन्म के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यह पूर्णतः साधना पथ पर चलनें से प्राप्त होने वाला लाभ है। हम दृष्टिपात करें तो हम पाते है बहुत से जन सामान्य आवश्यकता से भी कम वस्तुओं का संग्रह करते है। बहुत से आदिवासी बंधु जो जंगलो में निवास कर रहे है उनके पास आवश्यकता संसाधनों का भी अभाव है। तो क्या उन्हें पूर्व के जन्मों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है?

इस प्रकार अपरिग्रह का वस्तुओं के संग्रह से उतना अधिक संबंध नहीं है जितना की चिंतन और साधना से हैं। चिंतन और साधना के उच्च अवस्था पर पहुचनें पर योग साधक को विशुद्ध अपरिग्रहस्थैर्य की प्राप्ति होती हैं। चिंतन के उन्नत अवस्था में पहुचने पर चित्त निरोध की तरफ साधक क्रमोन्नत विकास करता हुआ उस स्थिति को प्राप्त कर जाता है। जहाँ से नवीन संस्कार नहीं बन पाते है। अब साधक को सिर्फ पुराने संस्कारों को नष्ट करना शेष रह जाता है।

इस प्रकार साधक को अपने पुराने संस्कारो की स्थिति का ज्ञात हो जाता है। जिससे साधक इन संस्कारों को धीरे–धीरे साधना के बल पर निरोध कर जाता है।

इस प्रकार महर्षि, यम के पांचो अंगों से होने वाले परिणामों का वर्णन कर देते है और उसके उपरांत महर्षि ने नियमो के आचरण पर चलने पर साधक को बल दिया है।

अब हम नियमों का वर्णन देखेंगे –

6.3 नियम

अब हम नियम का वर्णन पतंजलि योग सूत्र के अनुसार देखेंगे–

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(प.यो.सूत्र 2/32)

अर्थात्, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम है।

ये पाँचों अंग मिलकर नियम कहलाते है। इन यम और नियमों के पालन करने में विरोधी भाव आते है। उसके लिए महर्षि ने उपाय बतलाते हुये कहा है–

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।

(प.यो.सूत्र 2/33)

अर्थात्, विरोधी भाव उठने पर उनके विरोधी पक्ष या विचारों की भावना करना चाहिए।

अब हम नियम के पहले अंग शौच की विवेचना करेंगे–

6.3.1 शौच

नियम का पहला अंग शौच है। शौच को सामान्य अर्थ को आज के सामाजिक परिवेश में साज–सज्जा, साफ–सफाई आदि से लगाया जाता है। वर्तमान परिवेश में अधिकांश समाज शारीरिक स्थिति से ही शौच का अर्थ लगाते है। लेकिन महर्षि पतंजलि ने शौच को दूसरे अर्थों में प्रकट किया है। महर्षि सूत्ररूप में कहते है–

शौचात्स्वाडंगजुगुप्सा परैरसंसर्गः।

(प.यो.सूत्र 2/40)

अर्थात्, शौच से अपने अंगो के प्रति वैराग्य और दूसरों से संसर्ग न करने की भावना उत्पन्न होती है।

अब विचार उठता है कि, यह शौच कैसा है? जिससे अपने अंगो के प्रति वैराग्य और दूसरों से संसर्ग न रहने की इच्छा बलवती हो जाती है। इसीलिए इस शौच को साधना पथ से जोड़ा जाता है। जब साधक साधना करते हुए निरंतर योग पथ में लगा रहता है। तो उसकें मन में शौच की इच्छा बलवती हो जाती है। जिसके कारण साधक का मन एकाग्रता की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसी अवस्था के कारण साधक का धीरे–धीरे अपने प्रति ही ममत्व समाप्त हो जाता है अर्थात् उसे स्वयं के प्रति ही वैराग्य होने लगता है। जिससे उस साधक को परैः असंसर्गः अर्थात् दूसरो से असंसर्ग की भावना भी प्राप्त हो जाती हैं। इस अवस्था को प्राप्त साधक को दूसरों क्या प्रयोजन? इस प्रकार यह शौच साधन पथ–योगपथ का अंग है।

अंतःकरण की शुद्धता ही शौच है।

6.3.2 संतोष

दूसरा नियम संतोष है। हम समाज में संतोष को लेकर बहुत बार सुनते रहते है। अधिकतर हमने सुना है। वह बहुत संतोषी है, संतोष के साथ रहना चाहिए। इत्यादि–इत्यादि अनेक बाते हमने संतोष के विषय में सुन रखा है।

आइये अब हम महर्षि ने संतोष के विषय में क्या कहा है उसे समझने का प्रयास करते है।

महर्षि ने संतोष के विषय में सूत्र दिया है–

संतोषादनुत्तमसुखलाभः।

(प.यो.सूत्र 2/42)

अर्थात्– संतोष से अनुत्तम सुख का लाभ प्राप्त होता है।

अनुत्तम से तात्पर्य सर्वोत्तम से है। इस प्रकार संतोष वह स्थिति है जिससे सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है। एक साधक के लिए सर्वोत्तम वस्तु परमात्मा है। अतः संतोष वह स्थिति है जिससे साधक परमात्मा का अनुभव प्राप्त कर लेता है तथा उनकी स्थिति को प्राप्त कर उनमें प्रवेश प्राप्त कर लेता हैं। साथ ही साधना पथ में भी विकास को प्राप्त कर लेता है।

संतोष की स्थिति आ जाने पर अन्य प्रकार की इच्छाओं का अभाव हो जाता है। मन स्थिरता को प्राप्त होता है। जब इच्छायें ही नहीं रही तो मन में उठने वाले तरह–तरह के तरंग भी अपने आप शांन्त हो जाते है। संतोष की अवस्था ही मन की विजितावस्था में परिवर्तित हो जाती है। कहा भी जाता है संतोष से बड़ा कोई पूंजी नही है।

यहाँ यह बात समझने की जरूरत है। कि महर्षि पतंजलि जी ने जिन भी विषयों का वर्णन योगदर्शन में किया है। वह उसकी चरमोत्कर्ष अवस्था है। महर्षि ने उस विषय की उच्चतम अवस्था को ही हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

6.3.3 तप

अब हम नियम के अन्तर्गत आने वाले तिसरे अंग 'तप' का विवेचना देखेगे– 'तप' के विषय साधारण जन–मानस मे धारणा हम किसी इच्छा की पूर्ति या किसी भी इच्छित कार्य के लिए अपने शरीर को या जीवन को कठोर नियमों में बांध देते है। शरीर को या मन को निश्चित क्रिया में लगा देते है।

कभी–कभी हम सुनते है भी है, किसी कार्य की पुर्ति के लिए उस व्यक्ति विशेष ने कठोर 'तप' किया है या घोर तपस्या की है।

आइयें अब हम इस 'तप' को महर्षि पतंजलि के अनुसार समझने का प्रयत्न करते है। 'तप' के विषय मे महर्षि ने सूत्र दिया है–

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

(प.यो.सूत्र 2/43)

अर्थात्, तप से शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि और शुद्धि हो जाती है।

इस प्रकार तप से शरीर एवं इन्द्रियों की शुद्धि तथा सिद्धि हो जाती है। यह सिद्धि कैसे प्राप्त होती है? तो तप से शरीर की स्थिति उस अवस्था को प्राप्त कर जाती है। जहाँ पर शरीर भौतिक वातावरण के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। सर्दी–गर्मी आदि का प्रभाव नही होता है। इसी प्रकार इन्द्रियाँ भी उस अवस्था पर पहुंच जाती है। जहाँ से वह अपने विषयों से अधिक प्रभावित नही होती है तथा मन, काम, क्रोध, राग–द्वेष आदि से मुक्त होने लगता है।

मन की स्थिति के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि, इन्द्रियों के समूह मे से कोई एक इन्द्रिय भी मन को अस्थिर कर सकता है साथ ही साथ उसका हरण भी कर लेती है।

इसलिए मन सहित इन्द्रियों को अपने ध्येय के प्रति लगाने का प्रयत्न करना और उसमें सिद्धि की प्राप्ति होना ही तप है।

6.3.4 स्वाध्याय

नियम का चौथा अंग है – स्वाध्याय, स्वाध्याय का सामान्य अर्थ अध्ययन से लगाया जाता है। परन्तु योग विधा में यहाँ पर स्वाध्याय को महर्षि पंतजलि के अर्थो में समझनें का प्रयत्न करने पर हमे सूत्र प्राप्त होता है–

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

(प.यो.सूत्र 2/44)

अर्थात्, स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति होती है।

अब हमे यह समझने की आवश्यकता है। यह स्वाध्याय क्या है? जैसा की हम जानते है स्वाध्याय का सामान्य अर्थ अध्ययन लगाया जाता है। स्व और अध्ययन को जोड़ने पर स्वाध्याय शब्द बनता है। स्व का अर्थ स्वयं और अध्ययन से तात्पर्य पढना। अब स्वाध्याय का अर्थ निकलता है स्वयं का अध्ययन। अर्थात स्वयं का अध्ययन। जैसा कि हम जानते है पतंजलि योग सूत्र एक साधक को उसके योगपथ पर क्रमोन्नत बढने के लिए मार्गदर्शक के रूप मे कार्य करता है।

तो स्वाध्याय वह प्रक्रिया जिसमे कोई साधक स्वयं का अध्ययन करता है और धीरे–धीरे क्रमोन्नत विकास प्राप्त करते हुए योगपथ को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार वह साधक स्वाध्याय के द्वारा स्वयं का मूल्यांकन करता हुआ अन्त में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

एक साधक का लक्ष्य क्या है? अपने इष्टदेव की प्राप्ति और साधक स्वाध्याय से ही धीरे–धीरे अपने इष्टदेव की तरफ क्रमशः बढते हुये उनकी प्राप्ति कर लेता ळें

अब हम ईश्वरप्रणिधान की विवेचना करेंगें –

6.3.5 ईश्वर प्रणिधान

स्वाध्याय के बाद नियम का पाँचवा अंग ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान में दो शब्द ईश्वर और प्रणिधान सम्मिलित है। ईश्वर को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता कहा जाता है। अर्थात् वह परमसत्ता है। वह सर्वसक्षम है। इसलिए ईश्वर को सभी ने मान्यता दी है। महर्षि पतंजलि ने भी ईश्वर को परिभाषित किया है। दूसरा शब्द प्रणिधान है, जिसका अर्थ शरणागति या पूर्णरूपेण समर्पित हो जाना है। समर्पण कैसा हो? तो इस पर हम अपने ग्रंथो में पाते है कि, साधक अपने मन का सम्पूर्ण समर्पण करके ही शरणागति प्राप्त कर पाता है।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान के लिए सूत्र दिया है–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

(प.यो.सूत्र 2/45)

ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अभी हमने ईश्वर–प्रणिधान की विवेचना किया है अर्थात् ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण, मन, क्रम, वचन से समर्पण कर देना। इस प्रकार साधक का ईश्वर के निर्देशो के अनुसार ही जीवन–यापन करना उनके नियंत्रण में कार्य करना वास्तविक रूप से ईश्वर प्रणिधान है।

महर्षि कहते है कि जब साधक ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण कर देता है। तो उस साधक की सारी व्यवस्था ईश्वर स्वयं अपने हाथो में ले लेते है और उसका सम्पूर्ण कुशलक्षेम करने के साथ ही निर्देशन भी प्रदान करने लगते है। इस प्रकार उस साधक को शरणागति में जाने से 'समाधि' सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

समाधि से तात्पर्य आदि तत्व के साथ समत्व होना। आदि तत्व ईश्वर है उससे समता होना ही 'समाधि' कहलाती है।

6.4 आसन

अष्टांग योग में यम और नियम के बाद आसन को तीसरा अंग माना गया है। वर्तमान में आसन शब्द से सामान्यतः सभी परिचित है। आसन सामान्यतः शरीर की एक स्थिति को माना जाता है जिसमें शरीर को एक विशेष स्थिति में लाकर कुछ क्षण उसमें रूका जाता है। इससे शरीर में लचीलापन, आरोग्यता, ऊर्जा आदि का लाभ प्राप्त होता है।

महर्षि पतंजलि ने भी आसन के विषय में वर्णन किया है। उन्होंने आसन का सूत्र दिया है–

स्थिरसुखमासनम्।

(प.यो.सूत्र 2/46)

स्थिर और सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।

शरीर को एक स्थिति विशेष में लाकर बैठे रहना तो आसान है। लेकिन उसमें सुख कहाँ है? सुख का अनुभव तो मन पर निर्भर करता है। मन का शान्त स्थिर ठहरने पर ही आसन की सिद्धि प्राप्त होती है और इसी ठहराव और शान्ति से सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए मन का सुख के साथ स्थिर होना ही आसन है।

हमें प्रयत्न करके अपने मन को आसन तक की स्थिति में लाना है। यह शारीरिक स्थिति से ज्यादा मानसिक स्थिति पर निर्भर है।

6.5 प्राणायाम

वर्तमान समय में प्राणायाम बहुत ही प्रचलित शब्द है। वस्तुतः आज योग के अंगों में प्राणायाम को सबसे अधिक प्रयोग किया जा रहा है। प्राणायाम सामान्यतः श्वास–प्रश्वास की एक क्रिया–विधि है। जिसमें सामान्य रूप से पूरक, रेचक एवं कुम्भक तीन अंग है। पूरक अर्थात–श्वास लेना, रेचक से तात्पर्य श्वास छोड़ना एवं कुम्भक से तात्पर्य श्वास रोकना।

आइये महर्षि ने प्राणायाम को किस प्रकार सूत्र रूप में निरूपित किया है उसे देखते है।

महर्षि कहते है–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

(प.यो.सूत्र 2/49)

अर्थात्, श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है।

इस परिभाषा से प्राणायाम के विषय में स्पष्ट हो रहा है कि, श्वास और प्रश्वास की गति का रूकना ही प्राणायाम है। श्वास वह जो हम ग्रहण करते है प्रश्वास वह जो हम त्यागते है।

महर्षि ने प्राणायाम के भेद को भी सूत्रों के रूप वर्णित करते हुयें कहा है–

बाह्याभ्यंतरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।

(प.यो.सूत्र 2/50)

बाह्य, आभ्यंतर और स्तंम्भवृत्ति की भेद वाली देश, काल और संख्या द्वारा यह प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होता है।

बाह्य, आभ्यंतर और स्तंभवृत्ति ये तीन प्रकार के प्राणायाम है। जो हमारे वृत्तियों पर निर्भर होता है। इन्हीं वृत्तियों को हम देश, काल और संख्या द्वारा देखते है। इसी चेतना या सचेतावस्था के परिणामस्वरूप प्राणायाम की अवस्था दीर्घ और सूक्ष्म होता जाता है।

इस बात से स्पष्ट है कि, यहाँ महर्षि ने वृत्तियों की अवस्था को ही प्राणायाम से जोड़ा है। सूत्र में भी स्पष्टता के साथ बाह्य, आभ्यंतर और स्तंभ और वृत्ति शब्द आया है।

महर्षि ने एक चौथा प्राणायाम भी सूत्ररूप में वर्णित किया है–

बाह्याभ्यंतरविषयाक्षेपी चतुर्थः।

(प.यो.सूत्र 2/51)

अर्थात्, बाह्य और आभ्यंतर रूपी विषयों का भी विक्षेप करने वाला चौथा प्राणायाम है।

अब महर्षि पतंजलि ने इस सूत्र में चौथे प्राणायाम का वर्णन करते हुये स्पष्ट किया है कि, बाह्य और आभ्यंतर विषयों का भी संकल्प ना उठे तो वह चौथा प्राणायाम है। इसमें ना तो बाहर के संकल्प उत्पन्न होते है और ना ही भीतर के। अर्थात् इस चौथे प्राणायाम में वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाता है।

यह प्राणायाम की उच्च अवस्था हैं। इस प्रकार प्राणायाम साधक की वह स्थिति जहाँ वृतियों का पूर्ण निरोध हो जाता है ना कि श्वासों का निरोध होता है।

इस प्रकार प्राणायाम वह प्रक्रिया है जिसमें चित्त में उठने वाले संकल्पों–विकल्पों का नियंत्रण करना होता है ना कि श्वासो का नियंत्रण होता है।

अब हम प्रत्याहार का वर्णन महर्षि पतंजलि के अनुसार देखेंगे–

6.6 प्रत्याहार

प्राणायाम के बाद अष्टांग योग में प्रत्याहार का वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्याहार दो शब्दों प्रति एवं आहार से मिलकर बना है। जहाँ प्रति का अर्थ विपरीत एवं आहार का अर्थ विषय लिया जाता है।

विषय इन्द्रियो के द्वारा ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार प्रत्याहार का शाब्दिक अर्थ इन्द्रियों का अपने विषयों से विपरीत होना या उससे विमुख हो जाना।

अब हम महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित प्रत्याहार को सूत्र रूप में देखेंगे महर्षि कहते है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

(प.यो.सूत्र 2/54)

इन्द्रियों का स्वयं के विषयों से हटकर चित्त के स्वरूप के अनुसार हो जाना प्रत्याहार है।

यहां प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, इन्द्रियों का अपने विषयों से विमुख होने से क्या लाभ है? इस पर महर्षि कहते है–

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

(प.यो.सूत्र 2/55)

इससे इन्द्रियों पर परम वश या पूर्ण नियंत्रण आ जाता है।

इन्द्रियों पर इस प्रकार के नियंत्रण होने की स्थिति को ही योग की भाषा में जितेन्द्रिय कहा जाता है।

6.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हम पतंजलि योगदर्शन मे वर्णित अष्टांग योग को भली–भांति समझने में समर्थ होगे। अष्टांग योग में वर्णित विभिन्न अंगों जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार तक के अंगों को समझकर उनके सूत्रों सहित विश्लेषण कर सकेगे। विभिन्न अंगों की विशेषताओं को भी सूत्रों के ही माध्यम से महर्षि जी ने वर्णित कर दिया है।

उन सूत्रों को भी समझने में सहायता प्राप्त होगी। यम के अन्तर्गत आने वाले अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार नियम का भी वर्णन कर उसके उपांगों का वर्णन किया गया है। इस इकाई में योग के अंगों का यथार्थ स्वरूप में रखने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार हम देखेगे आसन का वर्णन करते हुये हम पाते है कि 'आसन' मन की अवस्था है। आसन ही उच्च अवस्था को प्राप्त होकर 'प्राणायाम' कहलाता है। इन विषयों के माध्यम से तार्तिक रूप से इनका विश्लेषण किया गया है। जिसके हम समझने में और अध्ययन के समय जिज्ञासा भी उत्पन्न होगी। अन्त मे प्रत्याहार एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन कर अष्टांग योग के पाँच अंगों का वर्णन कर इस इकाई को समाप्त किया गया है।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी।
2. योग सूत्र – वाचस्पति मिश्र

3. योग दर्शन – राजवीर शास्त्री

4. पतंजलि योग सूत्र – श्री श्री रविशंकर

5. योग दर्शन – पं श्रीराम शर्मा आचार्य

6.9 सम्बन्धित प्रश्न

6.9.1 दीर्घ प्रश्न

1. अष्टांग योग को महर्षि जी ने क्यो आवश्यक बतालाया है एवं अष्टांग योग के अंगों का विवरण दे।
2. अष्टांग योग के अंग यम और नियम का वर्णन करे।
3. प्रत्याहार एवं उसके लाभ का वर्णन करे।

6.9.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अष्टांग योग का सूत्र वर्णित करे।
2. यम की विशेषता सूत्र के साथ लिखे।
3. आसन किसे कहते है।
4. आसन की विशेषता क्या है।
5. प्राणायाम क्या है।
6. महर्षि पतंजलि जी ने प्राणायाम के कितने प्रकारों में बाँटा है।
7. प्रत्याहार का अर्थ संक्षिप्त में वर्णित करे।
8. प्रत्याहार का लाभ क्या है।

6.9.3 – वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अष्टांग योग का अंग नही है।

   (अ) आसन (ब) समाधि (स) शुद्धि (द) यम

2. अष्टांग योग के कितने अंग है?

   (अ) 05 (ब) 04 (स) 07 (द) 08

3. यम का अंग नहीं है?

   (अ) अस्तेय (ब) ब्रह्मचर्य (स) शौच (द) सत्य

4. नियम के कितने अंग है?

   (अ) 04 (ब) 06 (स) 05 (द) 03

5. प्राणायाम के कितने प्रकार योगदर्शन में वर्णित है?

   (अ) 02 (ब) 03 (स) 05 (द) 04

तृतीय खण्ड परिचय

इकाई. 07 – अष्टांग योग (अंतरण–साधना) धारणा ध्यान, समाधि,

इकाई. 08 – संयम का स्वरूप

इकाई. 09 – योग विभूतियाँ, अष्टसिद्धि अणिमा, महिमा, लधिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व

अष्टांग योग

इकाई–07

(अंतरण–साधना) धारणा, ध्यान, समाधि

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 धारणा

7.2.1 वाह्य धारणा

7.2.2 अन्तरंग धारणा

7.3 ध्यान

7.4 समाधि

7.5 सारांश

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.7 संबंधित प्रश्न

7.7.1 दीर्घ प्रश्न

7.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

योग का अनुशासन चित्त वृत्तियों के निरोध से स्थापित होता है। चित्त में पूर्व के अनेक जन्मों के संस्कारों से निर्मित वृत्तियां है। यम नियम से प्रत्याहार तक के बहिरंग साधना से साधक चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं कर सकता है। इन पांचो अंगों की साधना केवल योग हेतु तैयारी मात्र है। वस्तुतः

वर्तमान कर्मों से भी बनने वाली संस्कार वृत्ति को भी अल्प मात्रा में ही बहिरंग साधनों के अनुशासन से संकुचित किया जा सकता है। अन्तरंग साधनों जैसे धारणा, ध्यान इत्यादि से ही चित्त वृत्तियां शांत होकर समाप्त हो जाती हैं। इस स्थिति को प्राप्त साधक पूर्ण समाधि को प्राप्त कर योग के पराकाष्ठा को प्राप्त कर अपने आप में एक पूर्ण योगी बन जाता है। ऐसे साधकों को योग की अनेक विभूतियां स्वमेव प्राप्त हो जाती है। इसी इकाई में हम उन योग की विभूतियों का भी अध्ययन कर योग के प्रति अपने अध्ययन को विस्तृत कर सकेंगें। वस्तुतः धारणा, ध्यान, समाधि और योग मार्ग प्रविष्ट योगी को प्राप्त होने वाले अनेक प्रकार की विभूतियां इत्यादि यह सभी एक योगी की आन्तिरिक स्थिति है। हम एक–एक करके इन सभी विषयों पर गहनता से अध्ययन करेंगें।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य हमें अष्टांग योग के अंतरंग साधनों के अंगो से परिचित कराना है। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के अन्तर्गत धारणा, ध्यान एवं समाधि का वर्णन करते हुए इन साधनों को अन्तरंग साधना के क्रम में रखा है। साधक की साधना यम नियम से प्रारम्भ होकर प्रत्याहार तक बहिरंग ही रहती है। धारणा के स्तर पर साधना अन्तर्मुखी एवं सूक्ष्म हो जाती है जो ध्यान एवं समाधि तक पहुचतें–पहुचतें अतिसूक्ष्म स्थिति में पहुँच जाती है। इस इकाई के द्वारा हम योग के अतिसूक्ष्म साधनो को भली–भांति समझने में सफल हो पायेगें।

7.2 धारणा

प्रत्याहार के सिद्ध होने पर चित्त अपने स्वरूप का अनुमान करने लगता है। जब साधक इस स्थिति पर पहुंच जाता है कि वह अभ्यास द्वारा चित्त को वाह्य एवं आभ्यन्तर विषयों से हटा कर कहीं भी चित्त को इच्छानुसार रोक सके उसे धारणा कहते है। इस प्रकार चित्त को वाह्य एवं आभ्यन्तर समस्त विषयों से हटाकर किसी एक स्थान विशेष में एकाग्र होना ही धारणा है। चित्त का किसी एक देश (स्थान) में बाधना या एकाग्र करना धारणा है।

व्यासभाष्य में धारणा के अन्तर्गत देश विशेष में चित्त को एकाग्र करने के स्थान पर शरीर के वाह्य तथा आभ्यन्तर अंगों में चित्त को एकाग्र करना स्वीकार किया गया है। इस प्रकार व्यासभाष्य में नाभिचक्र, हृदय पुण्डरीक, मूर्ध्वज्योति (मस्तकगत प्रकाश) नासिका का अग्रभाग, जिहवा के अग्रभाग आदि प्रदेशों में अथवा वाह्य विषयों में चित्त को केवल वृत्ति से बाधना धारणा है।

धारणा का अभ्यास करते समय प्रारम्भ में किसी दीप शिखा, किसी देवी या देवता का विग्रह या नासिका के अग्रभाग पर एकाग्र भाव से निरन्तर देखते है और जब निरन्तर देखते हुए आँखे श्वतः बन्द हो जाती है तब चित्त में उसी की वृत्ति प्रवाहित होती रहती है। प्रारम्भ में इन उपायों से भी चित्त एक जगह नहीं ठहरता तथा अल्प समय में ही या न्यूनाधिक समयान्तराल में इन विषयों से भिन्न वृत्ति चित्त में उभरने लगती है ऐसा होने पर पुनः उस वृत्ति को चित्त से हटाना चाहिए तथा निर्धारित ध्येय विषय में चित्त को स्थिर व एकाग्र रखने के लिए अधिकाधिक समय तक प्रयत्न करना चाहिए।

धारणा का अभ्यास करने वाले साधक को अपना चित्त निरन्तर ध्येय विषय के चिन्तन में लगाये रहना चाहिए तथा चित्त के भटकाव की स्थिति में उसे पुनः वही लाना चाहिए। भटकाव की स्थिति को वह जितना कम कर सके उतना कम करता चले तथा निरन्तर अभ्यास के द्वारा इस भटकाव को अन्ततः पूरी तरह से बन्द कर दे।

इसके साथ ही साथ निरन्तर अभ्यास से वह अपने चित्त को ध्येय विषय पर केन्द्रित करें। इस प्रकार धारणा के अन्तर्गत चित्त को किसी एक विषय पर केन्द्रित किया जाता है। धारणा समाधि का आवश्यक अंग है यह समाधि का प्रवेश द्वार है। जिसे किसी भी स्थिति में समाधि से अलग नहीं किया जा सकता है। धारणा के पश्चात् ध्यान का अभ्यास किया जाता है।

यह योग की छठवीं क्रमोन्नत अवस्था है। अब तक हम यह समझ चुकें है कि, चित्त को किसी एक स्थल पर स्थिर करना धारणा कहलात हैं। धारणा को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि सूत्ररूप में व्यक्त करते हुए कहते है–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

(प.यो.सूत्र 3/1)

अर्थात्, चित्त को किसी स्थान विशेष पर रोक देना धारणा कहलाता है।

चित्त की स्थिरता, धारणा शक्ति से ही आती है। धारणा ध्यान की पूर्व तैयारी है। यह एक क्रियाविधि है। इसे दो प्रकार से किया जाता है।

7.2.1 वाह्य धारणा

जब किसी बाहर स्थित वस्तु जैसे चित्र या ध्येय पर मन स्थिर करने का अभ्यास किया जाता है तो उसे वाह्य धारणा कहते हैं। हठयोग में वाह्य धारणा हेतु त्राटक विधि का प्रयोग किया जाता है। जैसे– दीपक की लौ, देव चित्र, कोई बिन्दु इत्यादि पर धारणा का अभ्यास करना है।

7.2.2 अन्तरंग धारणा

जब किसी शब्द, नाम, नाद एवं स्मृति में निहित किसी मांसिक छवि पर मन स्थिर करने का अभ्यास, अन्तरंग धारणा कहलाता है। अन्तरंग धारणा ही विकसित अवस्था में ध्यान में परिवर्तित हो जाती है।

7.3 ध्यान

धारणा में चित्त को जिस विषय में स्थिर किया जाता है जब वह उसमें स्थिर रहकर निरन्तर उसी ध्येय विषय में चित्त का व्यवधान रहित निरन्तर प्रवाहित होना ध्यान है।

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में ध्यान को वर्णित करते हुये सूत्ररूप में व्यक्त करते है–

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

(प.यो.सूत्र 3/2)

अर्थात्, जहाँ चित्त को स्थिर किया जाय उसी में वृत्ति का एकतार चलना क्रम न टुटना ध्यान कहलाता है।

इस प्रकार, जहाँ चित्त को लगाया जाय उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। ध्यान में चित्त ध्येय विषय में पूर्णतः एकाग्र हो जाता है। इस अवस्था में ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय की प्रतीति नहीं होती है अर्थात ध्यान में अन्य दूसरी वृत्तियों का उदय नहीं होता है। जबकि धारणा में दूसरी वृत्तियाँ उत्पन्न होती रहती है धारणा एवं ध्यान में यही अन्तर है।

ध्यान में विचारों का प्रवाह बन्द हो जाता है तथा वृत्ति का प्रवाह ध्येय मात्र की तरह ही हो जाता है तथा अन्य कोई भी वृत्ति नहीं उठती। जबकि धारणा में ध्येय विषय से भिन्न वृत्तियाँ रह रहकर उठती रहती है। इस प्रकार ध्येय विषय में वृत्तियों की निरन्तरता के कारण ही ध्यान धारणा से भिन्न होता है।

निरन्तर अभ्यास के द्वारा जब धारणा दृढ़ अवस्था को प्राप्त हो जाती है तो वही धारणा ध्यान में परिणत हो जाती है। जिसमें साधक को ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय का बोध नहीं

होता है। इस प्रकार ध्यान की परिपक्व अवस्था में साधक को ध्येय विषय के अतिरिक्त देश एवं काल आदि का भी बोध नहीं होता है।

निरन्तर अभ्यास से ही ध्यान दृढ अवस्था को प्राप्त होती है और ध्यान के दृढ़ हुए बिना समाधि सम्भव नहीं है क्योंकि समाधि चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था है और ध्यान के दृढ़ हुए बिना अन्य वृत्तियों का निरोध संभव नहीं है तथा वृत्तियों के निरोध न होने से समाधि भी संभव नहीं है।

वृत्तियों का निरोध ध्यान के अभ्यास से ही होता है। निरन्तर अभ्यास से जब ध्यान पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है तो वही ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाता है जहाँ अभिज्ञा का भाव लुप्त हो जाता है। उस धारणा स्थल में ध्येय विषयक ज्ञान का एक समान प्रवाह बने रहना ध्यान कहलाता है तथा अन्य ज्ञान का विचार ध्यान के बीच न आये। इस प्रकार ध्यान समाधि की पूर्व अवस्था है जो कि समाधि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

7.4 समाधि

समाधि को वर्णित करते हुये महर्षि पतंजलि सूत्र देते है–

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि।

(प.यो.सूत्र 3/3)

अर्थात, जब ध्येयमात्र ही शेष रह जाता है और चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाता है तब यह स्थिति समाधि कहा जाता है।

समाधि योग साधना का लक्ष्य है यह योग की चरम अवस्था है। ध्यान ही पराकाष्ठा पर पहुंच कर समाधि में परिवर्तित हो जाता है। जब साधक ध्यान का अभ्यास करते हुए ध्यान की दृढ अवस्था को प्राप्त कर लेता है। तब एक ऐसी अवस्था आती है जिसमें कि साधक को स्वयं का तथा ध्यान रूपी क्रिया का मी बोध नहीं रहता। अपितु ध्येय मात्र ही रह जाता है तब इसी अवस्था को समाधि कहते है। जहाँ ध्याता और ध्यान दोनों ही ध्योकार हो जाते है।

चित्त जिसका ध्यान कर रहा हो उसका स्वरूप शून्य हो कर जब केवल ध्येयमात्र की ही प्रतीति होती है वह समाधि है। यह चित्त की स्थिरता की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। ध्यान एवं समाधि में यह अन्तर

है कि ध्यान में साधक को ध्याता, ध्येय एवं ध्यान का स्पष्ट बोध होता है। परन्तु जब यही ध्यान निरन्तर अभ्यास से अपनी ध्यानाकारता का त्याग कर सिर्फ ध्येय रूप से आभासित होने लगता है तब इसे ही समाधि कहा जाता है।

जैसे जल में डाली हुयी मिश्री (शक्कर) जल में विद्यमान रहते हुए भी जल रूप हो जाने से मिश्री रूप से न आभासित होकर केवल जलरूप से ही आभासित होती है। उसी प्रकार समाधि अवस्था में ध्यान के विद्यमान रहते हुए भी ध्येय रूप हो जाने से ध्यान रूप से न आभासित होकर केवल ध्येय रूप से ही आभासित होता है।

यदि समाधिकाल में ध्यान की विद्यमानता न स्वीकार किया जाय तो ध्येय का प्रकाश कौन करेगा ? क्योंकि ध्येय का प्रकाश ध्यान ही करता है इस कथन को इव पद से व्यक्त किया है अर्थात समाधिकाल में ध्यान विद्यमान होता हुआ भी उसकी प्रतीति न होने से स्वरूप शून्य के जैसा है। अतः ध्यान की सर्वोच्च दृढ अवस्था का नाम ही समाधि है। समाधि के मुख्यतः दो भेद है– सम्प्रज्ञात समाधि एवं असम्प्रज्ञात समाधि।

सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता है इसीलिए इसे सबीज समाधि भी कहते है क्योंकि समाधि की इस अवस्था में चित्त की वृत्तियाँ बीज रूप में विद्यमान रहती है। जबकि असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इसे निर्बीज समाधि भी कहते है।

सम्प्रज्ञात समाधि

उपर्युक्त उपायों से अभ्यास करते हुए जब साधक का चित्त स्थिर एवं निर्मल हो जाता है तब उस अवस्था में चित्त ग्रहीता (आत्मा). ग्रहण (अन्तःकरण एवं इन्द्रिया) एवं ग्राह्य (पंच महाभूत तथा सूक्ष्म तन्मात्रादि विषयों) में अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय में स्थित और तदाकार हो जाता है इसी को सम्प्रज्ञात समाधि कहते है इस अवस्था में मन (चित्त) पूर्णतः नियन्त्रित रहता है।

इस अवस्था का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है कि–

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः।

(प.यो.सूत्र 1/41)

अर्थात, जिसकी समस्त वृत्तियों क्षीण हो चुकी है ऐसे स्फटिक मणि की भांति निर्मल चित्त का ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय में स्थिर एवं तदाकार हो जाना ही सम्प्रज्ञात समाधि है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जैसे स्फटिक मणि के सामने चाहे जिस वर्ण की वस्तु यथा लाल, नीली, पीली आदि रखी जाय वह उसी वर्ण के समान प्रतीत होने लगती है। वैसे ही जब चित्त की राजस एवं तामस युक्त समस्त वृत्तियों क्षीण हो जाती है तब ऐसी स्थिति में सत्व गुण के प्रकाश में तथा सात्विकता बढ़ने से वह इतना स्वच्छ एवं निर्मल हो जाता है कि उसे जिस किसी भी वस्तु में स्थिर (एकाग्र) किया जाता है वह उसी के आकार को ग्रहण कर लेता है अर्थात तदाकार हो कर उसका साक्षात्कार करा देता है। चित्त का तदाकार हो जाना ही सम्प्रज्ञात समाधि है।

योगसूत्र में सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद माने गये है वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि तथा अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि।

(अ) विकर्तानुगत सम्प्रज्ञात समाधि

यह सम्प्रज्ञात समाधि की प्रथम अवस्था है। समाधि की इस अवस्था में चित्त स्थिर होकर स्थूल ध्येय विषयाकार होता है। इसका आधार स्थूल विषय है। सामान्यतः पंचज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जिन विषयों का ज्ञान हमें होता है वे सब स्थूल विषय के अन्तर्गत आते है जैसे किसी देवता की मूर्ति, सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथ्वी, स्थूल इन्द्रियाँ तथा शरीर आदि। साधक अपनी रूचि के अनुसार किसी भी स्थूल विषय जिस पर वह अपना ध्यान आसानी से केन्द्रित कर सके उस स्थूल विषय में चित्त को पूर्णतः एकाग्र करना चाहिए। इससे जो ग्राह्य विषयक प्रज्ञारूप भावना विशेष उत्पन्न होती है उसे वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। समाधि की इस अवस्था में जिस स्थूल विषय में चित्त को एकाग्र किया जाता है उसके यथार्थ स्वरूप का समस्त ज्ञान साधक को प्राप्त हो जाता है। वितर्कनानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के दो भेद है सवितर्क एवं निर्वितर्क ।

(अ.1) सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि

समाधि की इस अवस्था में शब्द, अर्थ एवं ज्ञान के विकल्प विद्यमान रहते है। यद्यपि ये तीनों भिन्न–भिन्न है परन्तु समाधि की इस अवस्था में ये अभेद रूप से प्रतीत होते है। जब साधक समाधि के प्रारम्भ में किसी स्थूल विषय पर अपना चित्त स्थिर करता है तो उसे सबसे पहले उस ध्येय विषय के नाम, रूप एवं ज्ञान के विकल्पों से युक्त मिश्रित ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त उस ध्येय विषय के स्वरूप के अतिरिक्त उसके नाम एवं आकार वाला भी हो जाता है। इसलिए इस समाधि को सवितर्क समाधि कहते है।

सवितर्क समाधि का वर्णन करते हुए योगसूत्र में कहा गया है कि–

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्ति।

(प.यो.सूत्र 1/42)

अर्थात जहाँ शब्द, अर्थ एवं ज्ञान अभिन्न ज्ञात हो वह सवितर्क समाधि है।

शब्द उसे कहते है जिसे श्रवणेन्द्रिया ग्रहण करती है जैसे गौ एक शब्द है जिसे श्रवणेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। अर्थ का तात्पर्य उस विषय या शब्द से है जिसको सुनने पर हमें विशिष्ट जाति आदि का बोध होता है जैसे गाय (चार पैर, दो सींग, दो कान तथा एक पूंछ वाली एक विशिष्ट पशु है) ज्ञान का तात्पर्य उस सत्वप्रधान बुद्धि से है जो शब्द एवं अर्थ दोनों का बोध कराती है जैसे गौ शब्द और उसका अर्थ गाय दोनों संयुक्त रूप से बताती है कि गौ शब्द का ही गाय रूपी विशिष्ट पशु अर्थ है। यद्यपि ये तीनों अर्थात शब्द, अर्थ एवं ज्ञान भिन्न–भिन्न होते हुए भी अभिन्न रूप से प्रतीत होते है।

इन तीनों के भिन्न–भिन्न होने पर भी इन तीनों का संबंध कुछ इस प्रकार का है कि इन तीनों में से किसी एक की भी उपस्थिति में अन्य दोनों की उपस्थिति हो जाती है। जैसे शब्द के उच्चारण मात्र से ही अर्थ एवं ज्ञान का भी बोध हो जाता है। इस प्रकार इन तीनों के अभेद न होने पर भी अभेद रूप से प्रतीत होना ही परस्पर मिश्रण है। इस प्रकार के ज्ञान को ही विकल्प रूप कहते है जिसमें चित्त शब्द अर्थ एवं ज्ञान इन तीनों के मिश्रित आकार वाला हो जाता है।

कहने का आशय यह है कि शब्द, अर्थ एवं ज्ञान ये तीनों परस्पर भिन्न–भिन्न है परन्तु शब्द–संकेत की स्मृति से एक का ज्ञान होने से दूसरे दोनो का भी साथ ही बोध हो जाता है इससे शब्द ज्ञानपूर्वक इस शब्द, अर्थ ज्ञान के असत्य अभेद विषयक होने से यह ज्ञान विकल्परूप है। इसलिए संकेत स्मृतिपूर्वक स्थूलभूत अर्थ या भौतिक पदार्थ में समाहित योगी के जो शब्द, अर्थ एवं ज्ञान के विकल्प से मिश्रित समाधि होती है वह सवितर्क समाधि हैं।

(अ.2) निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि

सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त में शब्द, अर्थ एवं ज्ञान इन तीनों का बोध होता है अर्थात चित्त शब्द, अर्थ, एवं ज्ञान इन तीनों में तदाकार रहता है। सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि के निरन्तर अभ्यास से चित्त की एकाग्रता धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। यह एकाग्रता जितनी अधिक बढ़ती जाती है चित्त उतना ही वाह्यवृत्ति से अन्तर्मुखी होती जाती है। यह एकाग्रता धीरे–धीरे इतनी अधिक बढ़ जाती है कि शब्द और उस शब्द के अर्थ के सम्बन्ध से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसकी भी स्मृति नहीं रह जाती है।

चित्त में ध्येय विषय के नाम तथा उस विषय से विषयाकार होने वाली चित्तवृत्ति दोनों का ही स्मरण नहीं रहता। ऐसी अवस्था में चित्त के अपने स्वरूप का भान न होने के कारण उसके स्वरूप के अभाव की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में साधक समस्त विकल्पों से रहित होकर सिर्फ ध्येयमात्र के स्वरूप का साक्षात करता है। योगसूत्र में कहा भी गया है कि–

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवाऽर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का।

(प.यो.सूत्र 1/43)

अर्थात, स्मृति के शुद्ध होने पर अपने स्वरूप से रहित अर्थमात्र को प्रकाशित करने वाली चित्त की स्थिति ही निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि है।

चूंकि इसमें शब्द एवं ज्ञान का कोई विकल्प नहीं रहता है अतः इसे निर्विकल्प समाधि भी कहते है।

(ब) विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि का निरन्तर अभ्यास करने से साधक वस्तु के स्थूल आकार का साक्षात करता है। इस अवस्था में पहुंचने के पश्चात साधक स्थूल से सूक्ष्म विषयों की ओर बढ़ता है और उसकी एकाग्रता का समावेश सूक्ष्म विषयों तथा सूक्ष्म शक्ति रूप इन्द्रियों तक पहुंच जाती है और साधक स्थूल विषयों के कारणभूत पाँचों सूक्ष्म विषयों का पाँचों तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) तथा इन्द्रियों के यथार्थ स्वरूपका संशय विपर्यय रहित समस्त विषयों का साक्षात करता है। यह अवस्था विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की है।

विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के दो भेद है सविचार एवं निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि। यह भेद सवितर्क एवं निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि के समान ही है। इनमें अन्तर केवल इतना है कि जहाँ सवितर्क एवं निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि का संबंध स्थूल ग्राह्य विषयों से है वही सविचार एवं निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि का संबंध सूक्ष्म ग्राह्य विषयों से।

(ब.1) सविचार सम्प्रज्ञात समाधि

ध्येय जब कोई सूक्ष्म विषय हो और चित्त उस ध्येय विषय के देश काल और निमित्त के विचार से मिश्रित हुआ अर्थात तदाकार होकर उस ध्येय विषय का साक्षात्कार कराकर उसका यथार्थ ज्ञान प्रदान कराता है तो उसे सविचार सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

(ब.2) निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि

सविचार सम्प्रज्ञात समाधि के निरन्तर अभ्यास से निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था उत्पन्न होती है। समाधि की इस अवस्था में चित्त की एकाग्रता बढ़ने पर देश काल और निमित्त आदि के ज्ञान से रहित होकर तथा शब्द और ज्ञान के विकल्पों से शून्य होकर केवल उस सूक्ष्म ध्येय विषय को ही प्रकाशित करे तो उसे निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

(स) आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि

योगी के द्वारा विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के निरन्तर अभ्यास से चित्त की एकाग्रता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह शक्तिमात्र इन्द्रियाँ तथा पंच तन्मात्राओं के कारण भूत अहंकार जो कि इनके अपेक्षाकृत सूक्ष्म है समरत विषयों का संशय विपर्यय रहित यथार्थ ज्ञान का साक्षात्कार करा देता है। इसी अवस्था को आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। समाधि की इस अवस्था में पहुँचकर साधक को अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। जिसके पश्चात उसे किसी भी विषय की अभिलाषा नहीं होती। इस अवस्था मेंआनन्द ही आनन्द उसका विषय बन जाता है। अतः साधक इसी को कैवल्य पद समझने की भूल कर सकता है। यह बहुत बड़ी भूल है यह कैवल्य की अवस्था नहीं है। अतः साधक को इसमें आसक्त न होकर आत्मसाक्षात्कार का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

(द) अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि

जब साधक आनन्दानुगत समाधि की अवस्था में न रूक कर आत्मसाक्षात्कार के लिए निरन्तर अभ्यासरत रहता है तब चित्त की एकाग्रता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह पुरुष से प्रतिविम्वित चित्त अर्थात अस्मिता का साक्षात्कार करा देती है। इसी अवस्था को अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। पुरूष और चित्त की अभिन्नता का नाम ही अस्मिता है। अस्मिता ही अहंकार का कारण है इसलिए अस्मिता अहंकार की अपेक्षा सूक्ष्मतर है।

यह त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रथम परिणाम होने के कारण पुरुष के आलोक से आलोकित रहता है। यह सत्वगुण प्रधान की अवस्था है तथा रजस एवं तमस केवल वृत्ति मात्र से ही रहते है। इसी कारण इसका साक्षात्कार अहंकार के साक्षात्कार से भिन्न होता है। इसीलिए यह आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अपेक्षा कही अधिक उच्चतम आनन्द की अवस्था है। समाधि की इस अवस्था में पहुंचने पर

साधक इसे ही कैवल्य पद समझने की भूल कर सकता है। यह कैवल्य की अवस्था नहीं है। अतः साधक को इसमें आसक्त न होकर आत्मोपलब्धि का प्रयास नहीं छोड़ना चाहिए।

उपर्युक्त चारों सम्प्रज्ञात समाधि सबीज समाधि है सा एव सबीजः समाधि यह सबीज समाधि है क्योंकि इन चारों समाधियों में बीज रूप कोई न कोई आलम्बन अवश्य ही विद्यमान रहता है। वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में जहाँ स्थूल विषयों का आलम्बन बना रहता है। वही विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में स्थूल विषयों से तो मुक्ति मिल जाती है परन्तु सूक्ष्म विषयों का आलम्बन बना रहता है। आनन्दानुगत सम्प्रज्ञाल समाधि में स्थूल एवं सूक्ष्मसमस्त विषयों से मुक्ति मिल जाने पर भी अहंकार में आसक्ति बनी रहती है।

इसी प्रकार अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में स्थूल एवं सूक्ष्म तथा अहंकार आदि से मुक्ति मिल जाने पर भी अस्मिता में आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार इन चारों समाधियों में बीज रूप कोई न कोई आलम्बन रहने के कारण तथा समस्त वृत्तियों का पूर्णतया निरोध न होने के कारण ये सबीज समाधि है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुच सकते है कि, जब ध्याता की मन की दृष्टि, ध्येय पर स्थिर हो जाती है तब ध्यान लग जाता है। ध्यान में ध्याता व ध्येय का द्वैत होता है। ध्यान सूक्ष्म होते–होते जब केवल ध्येय या लक्ष्य ही प्रकाशित रहता है और ध्याता–ध्यान द्वैत समाप्त हो जाता है तब ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाती है।

सम्यक धीयते मनः यस्मिन स समाधिः।

योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या– परम पूजनीय स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी

अर्थात जिसमें मन भली प्रकार समाहित हो जाय वह समाधि है। सम तत्व और आदि तत्व (परमात्मा) के साथ समत्व की प्राप्ति समाधि है।

7.5 सारांश

योग एक अनुशासन है। चित्त वृत्तियों को निरोध हेतु योगसूत्र में अटांगिक मार्ग है। प्रथम पाँच को वाह्य विधि में सम्मिलित किया जाता है। इन पाँचों को साधनें से संस्कार वृत्तिया शिथिल पड़ जाती है, परन्तु इनका निरोध नहीं हो पाता है। चित्र वृत्तियों के निरोध हेतु अष्टांगों के अंतिम तीन अंग हैं। इन्हें अन्तरंग विधि या चरण कहा जाता है।

धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों पदानुक्रमिक रूप से है। धारणा का अभ्यास मन को किसी एक स्थान विशेष पर स्थिर करने के लिये किया जाता है। धारणा ध्यान की पूर्व तैयारी है। जब धारणा की अवस्था सिद्ध हो जाती है तो वह ध्यान की ओर अग्रसर हो जाती है। ध्यान में ध्येय पर मन की दृष्टि का स्थिर हो जाता है। जब ध्यान इतना प्रगाढ़ हो जाय की ध्याता को ध्येय या इष्ट ही मात्र दिखाई दे तो ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाता है।

परमात्मा से समत्व की प्राप्ति का नाम समाधि है। समाधि दो प्रकार के योगसूत्र में बताये गये है। प्रथम सम्प्रज्ञात समाधि जिसमें वाह्य वृत्तियों का निरोध हो गया है। द्वितीय असम्प्रज्ञात समाधि जिसमें आन्तरिक वृत्तियों का निरोध हो जाता है। शुद्ध चैतन्य अविकारी पुरूष का स्वरूप असम्प्रज्ञात समाधि में प्रकट होता है।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. योग सूत्र भाष्य : पतंजलि योग समिति हरिद्वार
2. योग दर्शन की प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या : स्वामी अड़गड़ानंद
3. www.yogredia.com
4. भारतीय दर्शन : डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिंह
5. भारतीय दर्शन : डॉ. राममूर्ति पाठक

7.7 सम्बन्धित प्रश्न

7.7.1 दीर्घ प्रश्न

(क) अन्तरंग साधन में क्या–क्या आते है? धारणा एवं ध्यान की संकल्पना योगसूत्र के आधार पर समझाइये एवं समाधि की अवधारणा का विस्तृत विवेचना कीजिए।

(ख) धारणा, ध्यान एवं समाधि के मध्य अन्तर का स्पष्ट विश्लेषण करे?

7.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

(क) धारणा एवं ध्यान को समझाते हुए इनमें आपस में सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

(ख) समाधि क्या है। समाधि के प्रकारों को समझाइए।

(ग) सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि के प्रमुख अन्तरों को स्पष्ट कीजिए।

संयम का स्वरूप

इकाई – 8

इकाई संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 संयम

8.3 प्रज्ञा लोक

8.4 संयम की स्थिति

8.5 संयम की विशेषता

8.6 संयम से मिलने वाली विभिन्न विभूतियाँ

8.6.1 परिणामत्रय में संयम

8.6.2 संयम से सर्वभूतरूतज्ञान

8.6.3 संयम से पूर्वजन्म का ज्ञान

8.6.4 दूसरे के चित्त पर संयम

8.6.5 शरीर पर संयम

8.6.6 बलो पर संयम

8.6.7 संयम से दूर स्थित वस्तुओं का ज्ञान

8.6.8 सूर्य पर संयम

8.6.9 चंद्रमा पर संयम

8.6.10 ध्रुव तारा पर संयम

8.6.11 नाभि चक्र पर संयम

8.6.12 कंठकूप पर संयम

8.6.13 कुर्मनाड़ी पर संयम

8.6.14 मूर्धज्योति पर संयम

8.6.15 हृदय पर संयम

8.6.16 स्वार्थ पर संयम

8.6.17 उदानवायु पर संयम

8.6.18 समानवायु पर संयम

8.6.19 कान और आकाश पर संयम

8.6.20 शरीर और आकाश पर संयम

8.6.21 संयम से भूतजय

8.6.22 संयम से इंद्रियजय

8.6.23 क्षण और क्रम पर संयम

8.7 सारांश

8.8 उपयोगी पुस्तके

8.9 संबंधित प्रश्न उत्तर

8.0 प्रस्तावना

यह इकाई संयम पर आधारित है। इस इकाई में हम संयम के विषय में महर्षि पतंजलि जी ने अपने पुस्तक पतंजलि योग सूत्र में जो वर्णन किया है उसको समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में संयम के द्वारा आत्मबोध और उस संयम के द्वारा अनेक विभूतियां की प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। पतंजलि योगसूत्र में तीसरा पाद विभूतिपाद के नाम से जाना जाता है। इस पाद में महर्षि पतंजलि ने संयम का विस्तार से वर्णन किया है। महर्षि ने लिखते हुए कहा है कि, संयम धारणा ध्यान और समाधि तीनों का सम्मिलित रूप है। यह संयम इन तीनों का ही वर्णन करता है। धारणा, ध्यान और समाधि अष्टांग योग का अंग है जिसमें समाधि अष्टांग योग की अंतिम अवस्था है उस अवस्था तक पहुंचने के लिए हम जब योग मार्ग पर चलते हैं तो हमें मार्ग में संयम की आवश्यकता पड़ती है। अब इस इकाई में हम संयम को विस्तार से समझेंगे।

8.1 उदेश्य

- इस इकाई से हम पतंजलि योगसूत्र के विभूति पद में वर्णित संयम को समझ सकेंगे।
- यह इकाई हमें योग मार्ग पर चलने से प्राप्त होने वाले विभिन्न विभूतियां के विषय में जानकारी प्रदान करता है।
- यह इकाई हमें योग मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।
- यह इकाई मूलतः पतंजलि योगसूत्र में वर्णित संयम पर आधारित है।
- इस इकाई के द्वारा संयम के वास्तविक स्वरूप एवं विशेषताओं को भी समझने में मदद मिलेगी।

8.2 संयम

संयम के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए पतंजलि योग दर्शन के तीसरे अध्याय विभूति पाद का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने विभूतिपाद में धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया है और इन्हीं तीनों के सम्मिलित रूप को महर्षि ने संयम के रूप में परिभाषित किया है।

इस प्रकार धारणा ध्यान और समाधि तीनों का प्रतिफल ही संयम है।

महर्षि ने संयम को सूत्ररूप में परिभाषित करते हुए कहते हैं–

त्रयमेकत्र संयमः।

(प.यो.सूत्र 3/4)

अर्थात, तीनों एक होकर संयम हो जाते हैं।

यहां तीनों से तात्पर्य धारणा, ध्यान और समाधि ही है।

अब हम संयम से प्राप्त होने वाले विभूतियों का एक–एक करके अध्ययन करेंगे–

8.3 प्रज्ञालोक

प्रज्ञालोक को सूत्ररूप में परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं–

तज्जयात्प्रज्ञालोकः।

(प.यो.सूत्र 3/5)

अर्थात, संयम के प्रभाव से बुद्धि आलोक (प्रकाश) से ओतप्रोत हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने यहां प्रज्ञा लोक को परिभाषित करते हुए कहा है कि, संयम के पूर्ण प्रभाव मे आने पर साधक की बुद्धि अलौकिक प्रकाश वाली हो जाती है।

संयम के विषय में महर्षि कहते हैं कि, यह संयम साधक में अचानक नहीं आ जाता है यह क्रम से चलते रहने पर साधक को प्राप्त होने वाली वस्तु है।

अगले श्लोक में महर्षि ने संयम के विषय में कहा है कि, संयम को क्रमानुसार भूमियों में लगाना चाहिए वह भूमि क्या है? तो महर्षि ने धारणा, ध्यान और समाधि को भूमियों के रूप में विभक्त किया है। इस प्रकार साधक को सर्वप्रथम धारणा फिर ध्यान और अंत में समाधि में संयम प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार महर्षि ने संयम के द्वारा मिलने वाली पहली विभूति का वर्णन प्रज्ञा लोक के रूप में किया है।

8.4 संयम की स्थिति

प्रिय शिक्षार्थियों संयम की स्थिति पर की बात की जाए तो हम देखेंगे कि, संयम की स्थिति सध जाने पर सभी भौतिक और आध्यात्मिक लाभ साधक को प्राप्त होने लगता है। संयम से ही एक साधक अपने मन को और अपने चित्त को नियंत्रित कर सकते योग्य हो पता है।

वास्तव में संयम योग मार्ग में या कहें योग साधना में एक अत्यंत आवश्यक अंग है संयम से ही योगी को सभी विभूतियों की प्राप्ति होती है। संयम से ही योगी को अपने साधना को सफलता प्राप्त होती है। योग मार्ग में सफलता के लिए योग के साधनों को आवश्यक रूप से अपनाना पड़ता है इस साधनों को अपनाने के लिए एक साधक को नियमित रूप से योग मार्ग का पालन करना पड़ता है। इस नियमितता को प्राप्त करने के लिए साधक को संयम की आवश्यकता होती है।

8.5 संयम की विशेषता

संयम की विशेषताओं पर बात की जाए तो, इसके विशेष महत्व को इसी बात से जाना जा सकता है कि, महर्षि पतंजलि की ने पतंजलि योग सूत्र में जब संयम का वर्णन किया। तो वहां उन्होंने योग के तीन अंगों धारणा, ध्यान, और समाधि तीनों के एक होने पर ही संयम की प्राप्ति होती है। धारणा, ध्यान और समाधि जैसे तीन महत्वपूर्ण साधनों को एक मिलाकर जब संयम की प्राप्ति होती है। हमे इसी बात से संयम का विशेष महत्व को समझ मे आ जाता है।

संयम से ही एक साधक को विभिन्न प्रकार की विभूतियां की भी प्राप्ति होती है। संयम, के सही स्थिति मे आने पर ही एक साधक योग मार्ग में सफलता प्राप्त करता है। संयम से ही योगाभ्यासी अपने सभी वृत्तियों का निरोध कर पाता है।

इस प्रकार हम कर सकते हैं कि संयम से ही हमें अनेक प्रकार की विभूतियां की प्राप्ति होती है संयम के द्वारा ही हम अपने योग साधना में उन्नति कर पाते हैं। और योग की अंतिम अवस्था समाधि तक की दूरी तय कर लेते हैं।

8.6 संयम से मिलने वाली विभिन्न विभूतियों

हमने ऊपर अध्ययन किया योग साधना में संयम के सध जाने पर साधक को अनेक विभूतियां प्राप्त होती हैं पतंजलि योग सूत्र में महर्षि ने ऐसी लगभग 30 से 40 विभूतियों का वर्णन किया है जिनका अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे अब हम एक–एक करके उन सभी विभूतियां का परिचय प्राप्त करेंगे–

8.6.1 परिणामत्रय से मिलने वाली विभूति

जब हम परिणाम त्रय की बात करते हैं तो हम देखेंगे कि इसमें तीन प्रकार के निरोध को मिलाकर परिणाम त्रय की प्राप्ति होती है अब हम उनका एक–एक विवेचना करेंगे–

परिणाम त्रय का पहला अंग है निरोध–परिणाम, इस परिणाम के अंतर्गत वयुत्थान संस्कार जिसे हम मन की चंचलता कहते हैं उनका अभीभव हो जाता है अर्थात वह मिट जाता है इस प्रकार जो संस्कार प्रकट होते हैं वह चित्त का निरोध संस्कार है और यही निरोध, चित्त का निरोध–परिणाम है।

संयम के द्वारा चित्त का निरोध करने की प्रक्रिया में चित्त का शांत एकाग्रचित होने पर विषयों का चिंतन नहीं आता और सिर्फ ध्येय का चिंतन और एकाग्रता शेष रह जाता है यही चित्त का समाधि–परिणाम है।

चित्त में विषयों के उदय होने और शांत होने पर चित्त एक ध्येय समाहित हो जाता है जिसे समाधि कहा गया। उसके पश्चात यह विषयों का उदय होने वाली और शांत होने वाली वृत्तियां भी एक जैसी हो जाती हैं। जिससे उदय होने वाली वृत्तियां और शांत होने वाली वृत्तिया एक सी हो जाती है यह चित्त की एकाग्रता–परिणाम है।

चित्त की एकाग्रता प्राप्त होने के पश्चात भूत और इंद्रियों के भी परिणाम आ जाती हैं–

इसी पर महर्षि कहते हैं–

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः।

(प.यो.सूत्र 3/13)

इस प्रकार पंचभूतों और इंद्रियों के अंतराल में होने वाले धर्म–परिणाम, लक्षण–परिणाम और अवस्था–परिणाम की व्याख्या हो गई।

इस प्रकार निरोध, समाधि और एकाग्रता परिणाम से ही एक योगी के धर्म, लक्षण और अवस्था का भी परिचय प्राप्त हो जाता है।

अब महर्षि परिणामत्रय में संयम से मिलने वाली विभूति को बतलाते हुये कहते है–

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/16)

अर्थात्, परिणामत्रय में संयम होने पर अतीत् अर्थात जो बीत गया है और अनागत अर्थात जो भविष्य में होने वाला है उसका ज्ञान हो जाता है।

8.6.2 संयम से सर्वभूतरूत का ज्ञान

सर्वभूतरूत के ज्ञान का वर्णन महर्षि पतंजलि विभूति पाद के 17 में सूत्र में करते हैं। इसका वर्णन करते हुए

महर्षि ने सूत्र दिया है–

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरूतज्ञानम्।

(पं.यो.सूत्र 3/17)

अर्थात, शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनो का अध्यास अर्थात इनका आपस मे मिल जाना। ऐसी स्थिति होने पर सभी जीवो के वाणी का ज्ञान हो जाता है।

इस स्थिति में पहुंचा हुआ साधक किसी भी प्राणी के शब्दों को सुनकर उस प्राणी को देखकर उसके आशय को भली प्रकार समझ जाता हैं।

8.6.3 संयम से पूर्वजन्म का ज्ञान

अगली विभूति का वर्णन करते हुए महर्षि ने संयम से पूर्व जन्म के ज्ञान होने का संकेत किया है।

महर्षि सूत्र रूप में रहते हैं–

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/18)

अर्थात, संयम से संस्कारों का साक्षात्कार हो जाता है जिससे साधक को पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

जीवों का उनके ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेंद्रिय के द्वारा किए गए कर्मों एवं बुद्धि, विवेक के द्वारा किए गए चिंतन उनके संस्कारों में संग्रहित होते चले जाते हैं और यह संस्कार जन्म–जन्मान्तर से संग्रहित हो रहे हैं। इन्हीं संस्कारों पर संयम करने से साधक को अपने पूर्व जन्म के बारे में जानकारी मिल जाती है और यही संयम जब दूसरों के संस्कारों पर साधक द्वारा किया जाता है तो उसके भी पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

8.6.4 दूसरो के चित्त पर संयम

संयम के द्वारा दूसरे के चित्त का भी ज्ञान किया जा सकता है विभूति पद के 19 सूत्र में महर्षि ने इसका वर्णन करते हुए सूत्र दिया है–

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/19)

दूसरे के चित्त पर संयम करने से उस चित्त का साक्षात्कार हो जाता है जिससे उस चित्त का ज्ञान हो जाता है।

साधक अपने योग की उच्चतम अवस्था पर दूसरो के चित्त का ज्ञान बहुत ही सहज तरीके से प्राप्त कर लेता है।

8.6.5 शरीर पर संयम

शरीर के रूप में संयम करने पर जिन विभूतियो की प्राप्ति होती हैं उसको महर्षि पतंजलि ने सूत्र रूप में देते हुए कहा है–

कायरूपसंयमात् तद्ग्राहयशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेअन्तर्धानम्।

(प.यो.सूत्र 3/21)

अर्थात, शरीर पर संयम करने और वृत्ति की ग्रहण करने की शक्ति रोक लेने पर चक्षुओं का प्रकाश से संबंध समाप्त हो जाता है जिससे योगी अंतर्धान हो जाता है।

एक योगी शरीर के अंतराल मे संयम कर दूसरों की दृष्टि में आने वाली अपने शरीर की दृश्यता–शक्ति को ही समाप्त कर लेता है। जिसके कारण अन्य लोग अपने साधारण नेत्रों से उसे योगी को नहीं देख पाते हैं।

इस प्रकार संयम के द्वारा ही योगी अंतर्धान की विभूति प्राप्त कर लेता है।

8.6.6 बलो पर संयम

बलो पर संयम करने का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि सूत्र देते है–

बलेषु हस्तिबलादीनि।

(प.यो.सूत्र 3/24)

विभिन्न बलों में संयम करने से हर प्रकार का सामर्थ्य बल प्राप्त हो जाता है।

साधक को उसकी साधना में क्रमोन्नत विकास होने पर उसको विभिन्न प्रकार के सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाती हैं। उस सामर्थ्य के बल पर साधक योगमार्ग में आने वाले विघ्नों को अपनी साधना के बल पर काट देता है।

8.6.7 संयम से दूर स्थित वस्तुओ का ज्ञान

महर्षि ने संयम के द्वारा दूर स्थित वस्तुओं के ज्ञान का वर्णन भी सूत्र के रूप में किया है। महर्षि कहते हैं–

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/25)

जब प्रवृत्ति भी अलौकिक ज्योति से जुड़ जाती है। तो इस ज्योति का ठीक प्रकार से यथा स्थान संयम करने पर सूक्ष्म, व्यवधानयुक्त और दूर देश में कहीं भी स्थित वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार साधक संयम के द्वारा दूर स्थित वस्तुओं का भी जरूरत पड़ने पर एक स्थान पर बैठे–बैठे भली प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

8.6.8 सूर्य पर संयम

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।

(प.यो.सूत्र 3/26)

सूर्य मे संयम करने से समस्त भुवनो का ज्ञान हो जाता है।

भुवन एक यौगिक शब्द है। श्रीरामचरितमानस मे हमे त्रिभुवन, चौदह भुवन के साथ–साथ अगणित भुवनों तक का वर्णन मिलता है। जब हम एक साधक के रूप मे देखते है तो हमे अपने चित्त का निरोध करने के लिए अपने दस इन्द्रियाँ और अंतःकरण चतुष्टय अर्थात मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यही इस जीव की वृत्तियों के टिकने के चौदह स्थल है। यही योगमार्ग के चौदह भुवन हैं और इनमे प्रवाहित अगणित प्रवृत्तियाँ ही अगणित भुवन भी हो जाती हैं।

सूत्र से हमने जाना, सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है। यहा सूर्य ज्योतिर्मय परमात्मा का प्रतीक स्वरूप है। श्रीमद्भगवद गीता के अनुसार, सूर्य के मार्ग से गये हुए लोग पुनरावर्तन से मुक्त हो जाते है। यही महर्षि पतंजलि भी वर्णन करते है कि, चिन्तन जब परमात्मोन्मुखी को प्राप्त हो जाता है। तब साधक को भुवनज्ञान– भुवनों का ज्ञान हो जाता है।

8.6.9 चन्द्रमा पर संयम

सूर्य पर संयम का वर्णन करने के पश्चात महर्षि ने चंद्रमा पर संयम करने से प्राप्त होने वाली विभूति का वर्णन किया है। महर्षि कहते है–

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/27)

अर्थात, चन्द्रमा में संयम करने से तारों की व्यूह (संरचना) का ज्ञान प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद गीता के अनुसार, यह संपूर्ण जगत् एक रात्रि के समान है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

(गीता, 2/69)

जगतरूपी रात्रि मे सभी भूतप्राणि सोये हुए हैं। इस रात्रि मे संयमी पुरुष जाग जाता है। जिससे उस संयमी पुरुष को उसके साधना और संयम के प्रभाव के कारण इस जगत्रूपी रात्रि मे परमात्मा का क्षीण प्रकाश प्राप्त होने लगता है।

जिससे उस योग मे लगे संयमी साधक को ताराव्यूहज्ञान–तारों की स्थिति का वास्तविक ज्ञान हो जाता है।

8.6.10 ध्रुव तारा पर संयम

चंद्रमा पर संयम के वर्णन के उपरांत महर्षि पतंजलि ने ध्रुव तारा पर संयम से प्राप्त होने वाली विभूति का वर्णन किया है।

महर्षि सूत्र रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं–

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/28)

अर्थात, ध्रुव तारा में संयम स्थिर करने पर तारों की गति का वास्तविक ज्ञान हो जाता है।

साधक जब साधना की उच्च अवस्था में पहुंचता है तब साधक, ध्रुव तारा की तरह अटल, अडिग, स्तम्भवृत्ति की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उस स्थिति में साधक का सुरत अचल स्थिर ठहर जाता है और उसे तद्गति ज्ञानम् तारों की गति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

नोटः योग मे चित्तवृत्ति का वेग ही तारो की गति है। कभी यह चित्त अचल स्थिर हो जाता है तो कभी पवन की तरह गतिशील हो जाता है।

8.6.11 नाभि चक्र पर संयम

ध्रुव तारा पर संयम का वर्णन करने के उपरांत महर्षि पतंजलि ने नाभि चक्र पर संयम का वर्णन किया है।

महर्षि सूत्र रूप मे कहते है–

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/29)

नाभिचक्र मे संयम करने से शरीर की स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

नाभि शरीर का मध्य भाग है। यह शरीर के केन्द्र का प्रतीक है। साधना के फलस्वरूप जब चित्त की वृत्तियां सिमटते–सिमटते उद्‌गम में ही स्थिर हो जाती है। तब योग मार्ग पर आरूढ़ संयमी साधक को स्वयं के एवं दूसरो के कायव्यूहज्ञानम् अर्थात शरीर का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस स्थिति को प्राप्त साधक को स्वयं के एवं दूसरों के द्वारा बार–बार शरीर के ग्रहण करने के कारणो एवं साथ ही साथ कितने शरीर और पाने शेष हैं? इसका भली प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

साधना मे रत् महात्मा बुद्ध को इसी योग साधना के कारण स्वयं के कई जन्मों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। ठीक इसी प्रकार अनुसुइया के परमहंस स्वामी महाराज को ज्ञात हुआ कि, वे गत सात जन्मों से लगातार साधु थे। जड़भरत जी को भी मृग–योनि मे आना पड़ा। काकभुशुण्डि जी को भी हजारों जन्मों का ज्ञान प्राप्त था।

8.6.12 कंठकूप पर संयम

नाभि चक्र पर संयम का वर्णन करने के पश्चात महर्षि पतंजलि ने कंठकूप पर संयम का वर्णन करते हुए सूत्र दिया है–

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः।

(प.यो.सूत्र 3/30)

अर्थात, कंठकूप पर संयम सध जाने पर भूख एवं प्यास से निवृत्ति प्राप्त हो जाती है।

पतंजलियोगसूत्र को पूर्णरूपेण साधना पथ पर आरूढ़ साधक को ध्यान मे रखकर महर्षि ने वर्णित किया है। उपरोक्त सूत्र के अनुसार, जब साधक के कण्ठ पर केवल साधन नाम ही शेष रहता है, साधनरूपी नाम के कारण स्मृति ही शेष रह जाता है तो इस अवस्था को प्राप्त साधक की भूख–प्यास रूपी आशा, तृष्णा और वासनाये स्वतः ही समाप्त हो जाती है। साधक साधन पथ पर चलकर जब साध्य के निकट पहुंचता है तो उसकी सुरत साध्य मे ही अचल स्थिर ठहर जाती है और साधक को भूख–प्यास का भान ही नही रह जाता है।

चित्रकूट अनुसुइया के पुज्य परमहंस महाराज के साधनकाल के दौरान दो से तीन दिनों का उपवास बहुत ही सामान्य घटना हो गई थी। कभी कभार सात उपवास, चौदह उपवास भी हो जाता था। इसके उपरान्त भी महाराज जी के चेहरे पर किसी भी तरह की थकान के लक्षण नहीं होते थे।

8.6.13 कूर्मनाड़ी पर संयम

नाभि पर संयम का वर्णन करने के पश्चात महर्षि पतंजलि जी ने कूर्मनाड़ी पर संयम का वर्णन किया है जिसके लिए महर्षि ने सूत्र दिया है–

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्।

(प.यो.सू 3/31)

अर्थात, कूर्मनाड़ी में संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है।

कूर्म नाड़ी को हमारे प्राचीन ग्रंथो में प्रमुखता से वर्णित किया गया है। ऐसा माना जाता है कि, हमारा मुख्य प्राण इसी कूर्म नाड़ी मे विचरण करता है। प्राणवायु के द्वारा हम श्वास ही नहीं बल्कि उसके साथ बाह्य वातावरण के संकल्प विकल्प भी ग्रहण करते है। योगी इसी श्वास के साथ आनेवाले संकल्पों विकल्पों पर संयम कर उनसे परे हो जाता है। इस स्थिति की प्राप्ति वाले साधक मे विक्षोभ उत्पन्न नही हो पाता है जिससे उसके साधना की गति तीव्र हो जाती है। जिस प्रकार थोड़ा सा आहट

पाते ही कछुआ अपनी ग्रीवा, पाँव आदि अंगों को समेट लेता है, ठीक उसी प्रकार साधक विषयों के संपर्क मे आने पर अपनी बहीर्मुखी प्रवाहित इन्द्रियों को अंतर्मुखी कर लेता हैं।

8.6.14 मूर्धज्योति पर संयम

अब हम मूर्धज्योति पर संयम से प्राप्त होने वाले विभूति को महर्षि पतंजलि के अनुसार देखेंगे। महर्षि कहते है–

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।

(प.यो.सू 3/32)

अर्थात्, मूर्धा की ज्योति में संयम सध जाने पर सिद्ध पुरुषों के दर्शन प्राप्त होने लगते हैं।

मूर्धा का शाब्दिक अर्थ मस्तक होता हैं, यही से हमारे मस्तिष्क मे संकल्प–विकल्प उठते हैं। साधक को इसी पर संयम साधना होता है। जिससे सिद्धदर्शनम्–सिद्धों का दर्शन साधक को प्राप्त होने लगता है। विचार उठता है आखिर इन सिद्धों का क्या महत्व है? तो उन सब में परमतत्त्व परमात्मा का प्रवाह संचारित होता रहता है। जिससे उनसे जुड़कर साधक को भी परमात्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भगवद गीता भी संयम के विषय मे वर्णित है–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।

मूध्न्यार्धायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।

(गीता, 8/12)

अर्थात, इन्द्रियों को उनके विषयो से हटाकर, मन को हृदय में निरोध कर, और अंतरूकरण के व्यापार को भी मूर्धन्य मे स्थिर कर प्राण मे स्थित होकर योग को धारण करते है।

8.6.15 हृदय मे संयम

अब हम हृदय मे संयम करने से प्राप्त होने वाली विभूति का विश्लेषण करेगे।

महर्षि सूत्ररूप मे कहते है–

हृदये चित्तसंवित्।

(प.यो.सू 3/34)

हृदय पर संयम करने से चित्त के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है।

ऐसी अवस्था में साधक को चित्त के वास्तविक स्थिति का स्वतः ज्ञान प्राप्त हो जाता है। चित्त की वास्तविक स्थिति सूक्ष्म, निर्मल या विकृत है इसकी स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस अवस्था को प्राप्त हुआ चित्त ना उद्वेग को प्राप्त होता है और ना ही राग को प्राप्त होता है।

8.6.16 स्वार्थ पर संयम

अब हम स्वार्थ पर संयम करने से प्राप्त होने वाले विभूति का विश्लेषण करेंगे।

महर्षि पतंजलि इसके लिए सूत्र प्रदान करते हैं–

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते।

(प.यो.सूत्र 3/36)

स्वार्थ पर संयम प्राप्त होने पर कई सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है जैसे–

1. प्रातिभ– इस विभूति को प्राप्त साधक को बिना किसी प्रयास के सहजता से एक स्थान पर रहते हुए सब कुछ जानकारी प्राप्त होती रहती है।

2. श्रावण– इस विभूति के द्वारा योगी दूर स्थित ध्वनियों को भी सुन लेता है। उसकी श्रवण इन्द्रिय अलौकिक हो जाती है।

3. वेदन– इससे योगी को स्पर्श–ज्ञान की प्राप्ति प्राप्त हो जाती है।

4. आदर्श– इससे योगी को दिव्य रूप दर्शन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

5. आस्वाद– इस विभूति से योगी ब्रह्म–पीयूष का आस्वादन करने लगता है। उसे अन्य भौतिक रसों की कोई इच्छा नहीं रह जाती है।

6. वार्ता– इस विभूति को प्राप्त करने के बाद योगी को दिव्य गन्ध के अनुभव प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

7.

8.6.17 उदानवायु पर संयम

उदानवायु पर संयम का वर्णन करते हुए महर्षि सूत्ररूप में वर्णन करते हुए कहते है–

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्गउत्क्रान्तिश्च।

(प.यो.सूत्र 3/39)

अर्थात, उदान वायु पर विजय प्राप्त करने से साधक जल, कीचड़, कण्टकादि के संयोग से मुक्त हो जाता है और वह ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो जाता है।

शरीर मे उदान वायु कण्ठ से शिर तक विचरण करता है, और यह ऊर्ध्वगामी होता है। योगी को इसी पर संयम प्राप्त करना होता है। इससे योगी काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों से दूर हो जाता है। जिस प्रकार कीचड़ में रहते हुए कमल के पत्तों पर कीचड़ का प्रभाव नहीं पड़ता है। वह उससे लिपायमान नही होता है। ठीक इसी प्रकार महापुरुष भी इन विकारों से लिपायमान नहीं होता है और उनसे मुक्त रहता है।

8.6.18 समान वायु पर संयम

उदान वायु पर संयम करने से प्राप्त विभूति का वर्णन करने के पश्चात महर्षि पतंजलि ने समान वायु पर विजय प्राप्त करने से प्राप्त होने वाली विभूति का वर्णन किया है।

महर्षि सूत्र रूप मे कहते है–

समानजयाज्ज्वलनम्।

(प.यो.सू 3/40)

समान वायु पर संयम सध जाने पर योगी का शरीर प्रकाशमान जाता है।

परमात्मा भी प्रकाशमान है, और समान वायु पर विजय प्राप्त करने से योगी का शरीर उसी परमात्मा के प्रकाश प्रकाशित हो जाता है। समान वायु हमारे शरीर में हृदय से लेकर नाभि तक विचरण करती रहती है। योगी संयम द्वारा इसी सामान वायु को सम स्थिति ला देता है। जिससे योगी का चित्त भी सम स्थिति को प्राप्त कर लेता है। जिससे योगी के चित्त मे भले एवं बुरे उद्वेग नही उत्पन्न होते है और उसका शरीर प्रकाशमान हो जाता है। चित्रकूट अनुसूया के परमहंस स्वामी जी का शरीर साधना काल में बिल्कुल काला–काला था। जो स्वरूप की प्राप्ति के पश्चात सोने की तरह दीप्तिमान हो गया था।

8.6.19 श्रोत्र और आकाश के संबंध पर संयम

समान वायु पर संयम का वर्णन करने के पश्चात महर्षि पतंजलि ने श्रोत्र और आकाश पर संयम से होने वाले विभूति का वर्णन किया है।

जिसके लिए महर्षि सूत्र प्रदान करते हैं–

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम्।

(प.यो.सू 3/41)

कान और आकाश के संबंध पर संयम सध जाने योगी के श्रोत अर्थात कान दिव्यता को प्राप्त हो जाता हैं।

साधक का संयम जब अपनी चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो जाता है। तब साधक श्रोत्र और आकाश के संबंध पर संयम साध लेता है और उसका श्रोत दिव्यता को प्राप्त हो जाता है। जिस कारण साधक वायुमण्डल के दिव्य संदेशो को ग्रहण करने योग्य हो जाता है।

8.6.20 शरीर और आकाश के संबंध पर संयम

श्रोत और आकाश पर संयम का वर्णन करने के पश्चात महर्षि पतंजलि ने शरीर और आकाश पर संयम का वर्णन करते हुए सूत्र दिया है–

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्।

(प.यो.सू 3/42)

कायाकाशयोः– अर्थात, शरीर और आकाश के सम्बन्ध पर संयम स्थापित करने से लघुतूलसमापत्तेः शरीर रूई के समान भारहीन हो जाता है और योगी को आकाश में विचरण की शक्ति आ जाती है।

इस स्थिति मे स्थित योगी समाधिस्थ होने पर उसकी समाधि आकाशवत् हो जाती है, और समाधि की अवस्था धारा प्रवाह अर्थात निरंतर लगी रहती है। बाबा तुलसी भी कहते है, आकाश वह स्थिति है जहाँ पहुचने पर साधक को विश्राम प्राप्त होता है। यह चिदाकाश और कायाकाश पर संयम स्थापित करने से योग में मिलनेवाली विभूति हैं। इससे साधक के देहाभिमान का हरण हो जाता है।

8.6.21 संयम से भूतजय

महर्षि पतंजलि ने साधकों को उनके साधना के द्वारा संयम करते हुए भूतजय की विभूति प्राप्त होने का भी वर्णन किया है। जिसके लिए महर्षि पतंजलि ने सूत्र दिया है–

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः।

(प.यो.सूत्र 3/44)

पांच अवस्थाओ, अर्थात स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय एवं अर्थवत्त्व–इन अवस्थाओं पर संयम स्थापित कर लेने से भूतजयः हो जाता है।

भूत का अर्थ होता है, प्राणी और संसार के समस्त प्राणियों का जीवन पंच महाभूतो अर्थात आकाश, पृथ्वी, अग्नि, जल एवं वायु पर ही निर्भर है। फिर इन्ही प्राणियो मे शब्द, रस, रूप, गन्ध एवं स्पर्श के रूप मे पांच तनमात्राएं भी पाई जाती है। यही स्थूल और स्वरूप की स्थिति है। स्वरूप से ही उसकी सूक्ष्मता का ज्ञान हो जाता है। फिर इनका अन्वय अर्थात उनका अलग–अलग विश्लेषण करना और अन्त मे अर्थवत्त्व अर्थात गुणवत्ता देखने की क्षमता आदि मे संयम कर साधक भूतजय कर लेता है।

इस भूतजय से साधक को अन्य सिद्धियां भी प्राप्ति हो जाती है। जिसका वर्णन महर्षि पतंजलि ने सूत्र के रूप मे किया है। महर्षि कहते है–

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च।

(प.यो0सू 3/45)

अर्थात, भूतजय से अणिमा आदि आठ सिद्धियां, कायसम्पत् की प्राप्ति एवं पंचभूतों के बंधन से मुक्ति की योग्यता आ जाती है।

अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशित्व ये अष्ट सिद्धियाँ हैं।

कायसम्पत् को भी महर्षि पतंजलि ने सूत्ररूप मे प्रस्तुत करते हुए सूत्र दिया है–

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत्।

(प.यो.सू 3/46)

रूप, लावण्य, बल और वज्र के समान गठन ये शरीर की कायसम्पत् है।

संयम की इस स्थिति को प्राप्त साधक कान्ति और शारीरिक सौष्ठव की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। निवृत्ति के पश्चात् इस अवस्था को प्राप्त योगी रोगो आदि से मुक्त हो जाते है। ऐसे योगी किसी का रोग स्वतः ही स्वीकार कर लें तभी वे कुछ काल के लिए ही रोगग्रस्त होते हैं अन्यथा वे कभी भी रोगग्रस्त नहीं होते है।?

8.6.22 संयम से इंद्रियजय

महर्षि पतंजलि ने संयम से इंद्रियजय का भी वर्णन पतंजलि योगसूत्र में किया है। जिसके लिए महर्षि पतंजलि ने सूत्र रूप मे निर्णय दिया है–

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः।

(प.यो.सू 3/47)

अर्थात, ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय एवं अर्थवत्त्व इन अवस्थाओं में संयम करने पर समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाता है।

इन्द्रियों का मुख्य कार्य है ग्रहण करना अर्थात बाह्य विषयों का अनुसरण। जैसे, आँखों ने देखा तो इस इन्द्रिय ने अपने विषय को ग्रहण किया। श्रोत इन्द्रिय ने श्रवण किया तो इसने विषय को ग्रहण किया। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियां भी अपने–अपने विषयो को ही ग्रहण करती रहती है। इन्द्रिय ग्रहण से ही उन विषयो का स्वरूप स्पष्ट होता है।

अस्मिता वह स्थिति है, जिससे इन विषयो का उचित–अनुचित उपयोग का मिश्रण रहता है। अन्वय मे इन विषयो का विश्लेषण किया जाता है तथा अर्थवत्त्व में इन विषयो की उपयोगिता का विचार उनके क्लिष्ट अथवा अक्लिष्ट वृत्ति का विश्लेषण किया जाता है जिससे अन्त मे साधक को इस विश्लेषण से इन्द्रियों के क्रिया–कलापों को सही मायने मे जानने और इन्द्रियजय की प्राप्ति में सहायता प्राप्त हो जाती है।

8.6.23 क्षण और क्रम पर संयम

क्षण और क्रम का वर्णन महर्षि पतंजलि ने पतंजलि योगसूत्र में करते हुए सूत्र दिया है–

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/52)

अर्थात, क्षण तथा उसके क्रम पर संयम करने से विवेकजन्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

एक क्षण और उसके पश्चात् आने वाला जो दूसरा क्षण है, उनका जो क्रम है उन दो क्षणों के अन्तराल में कोई अन्य विचार न आये। इस प्रकार, जब क्षण तथा उसके क्रम में संयम स्थिर हो जाता है तब साधक को विवेकजन्य ज्ञान की प्राप्त हो जाती है।

8.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने पतंजलि योग सूत्र में वर्णित विभिन्न प्रकार की विभूतियों का अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन से हमें योग के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होगी और हम योग को और अधिक सही तरीके से जानने व समझने में सफल होंगे। इस इकाई मे 20 से अधिक विभूतियों का वर्णन पतंजलि योग सूत्र में वर्णित विभूतियो के अनुसार तथा सूत्रों के सहित किया गया है जिससे हमें महर्षि पतंजलि कृत पतंजलि योग सूत्र को अच्छी प्रकार से समझने में सहायता प्राप्त होगी।

8.8 उपयोगी पुस्तके

योग दर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानंद महाराज

योग दर्शन – श्री शैलेंद्र शर्मा

योग दर्शन – गीता प्रेस गोरखपुर

योग दर्शन – डां सोमवीर आर्य

8.9 संबंधित प्रश्न

1. विभूतिपाद पर टिप्पणी लिखें।

2. संयम के स्वरूप को स्पष्ट करें।

3. सूर्य पर संयम से प्राप्त होने वाली विभूति पर प्रकाश डालें।

4. चंद्रमा पर संयम से प्राप्त होने वाली विभूति पर प्रकाश डालें।

5. ध्रुव तारा पर संयम करने से प्राप्त होने वाली विभूति पर टिप्पणी लिखें।

6. विभूतिपाद में वर्णितप्रज्ञा लोक से आप क्या समझते हैं।

7. श्रोत और आकाश पर संयम से किस प्रकार की विभूति प्राप्त होती है।

8. शरीर में स्थित समान वायु का वर्णन करें।

9. कूर्मनाड़ी पर संयम से किस प्रकार की विभूति की प्राप्ति होंती है।

10. हृदय पर संयम से प्राप्त होने वाले विभूति का वर्णन करे।

योग विभूतियाँ

इकाई–09 योग विभूतियाँ

अष्टसिद्धि– अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 अष्टसिद्धि का परिचय

- 9.2.1 अणिमा
- 9.2.2 महिमा़
- 9.2.3 लघिमा
- 9.2.4 गरिमा
- 9.2.5 प्राप्ति
- 9.2.6 प्राकाम्य
- 9.2.7 ईशित्व
- 9.2.8 वशित्व

9.3 महापुरूषों एवं अन्य प्राचीन योगग्रंथों के अनुसार अष्टसिद्धि की विवेचना

- 9.3.1 श्रीमद् भागवत् के अनुसार
- 9.3.2 आद्य शंकराचार्य के शब्दों में अष्टसिद्धियां
- 9.3.3 पं श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार अष्टसिद्धियां

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 संदर्भित ग्रंथ

9.7 संबंधित प्रश्न

- 9.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 9.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

यह इकाई योग की विभूतियो के विषय में शिक्षार्थियों को जिज्ञासा उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करेगा। योग की विभूतियों को समझने एवं उनके महत्व से भी हम परिचित हो सकेगें। इस इकाई के माध्यम से हम पतंजलि योगसूत्र के तृतीय पाद विभूतिपाद में वर्णित योग विभूतियों का अध्ययन करेगें विशेषकर हम योगसूत्र में वर्णित 3.45 सूत्र का विश्लेषण करेगें। इस सूत्र में ही अष्टसिद्धि का नाम प्रथम बार महर्षि पतंजलि जी के द्वारा लिया गया है। इन सिद्धियों का साधक के जीवन में क्या महत्व है उनका किस स्तर पर साधक को उपयोग करना चाहिये। किस स्तर पर साधक को इन सिद्धियों से सावधान रहना चाहियें। साधक को इन सिद्धियों को प्राप्त करने के पश्चात कैसे आचरण में लाना की आवश्यकता है। साधक को किस प्रकार इन विभूतियो से व्यवहार करना चाहिए आदि विषयों पर हम इस इकाई में अध्ययन करेगें। इन योग की विभूतियों को उनके क्रमोन्नत विकास एवं अवस्थाओं का भी हम इस इकाई में भली–भांती अध्ययन करेगें।

9.1 उद्देश्य

- इस इकाई का उद्देश्य योग के शिक्षार्थियों में योग के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कराना है।
- इस इकाई के माध्यम से हमे योग की विभिन्न विभूतियों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।
- इस इकाई में हम पतंजलि योगसूत्र के तिसरे पाद विभूतिपाद में वर्णित अष्टसिद्धि का अध्ययन करेगें।
- इस इकाई के माध्यम से शिक्षार्थी योग के प्रति स्वयं जागरूक हो सकेगें और उसका उपयोग भी कर सकेगें।
- इस इकाई का उद्देश्य शिक्षार्थियों में योग साधना के प्रति रूचि उत्पन्न कराना है।
- जब शिक्षार्थी योग से जुड़ता है तो वह स्वयं के साथ–साथ अपने पास–पड़ोस, अपने समाज एवं देश के प्रति भी उपयोगी हो जाता है।
- इस इकाई के माध्यम से योग के शिक्षार्थी योग के सही स्वरूप को समझने में भी सफल हो सकेगें।

- वास्तव में योग से जुड़ने पर कोई भी योग साधक अपने सभी प्रकार के विकारों को अभ्यास करते–करते उन पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस इकाई के माध्यम से हम योग साधना से प्राप्त होने वाले विभूतियों तक की यात्रा को सही स्वरूप में समझ सकेगे।

9.2 अष्टसिद्धि का परिचय

हम सभी ने अपने जीवनकाल के अभी तक के सफर में कभी न कभी किसी प्रकार के आश्चर्यजनक घटनाओं के विषय में अवश्य सुना होगा। हमनें कभी अपने मित्रों से, अपने पारिवारिक सदस्यों से, अपने मध्य रहने वाले बंधुओ के माध्यम से सुना होगा या कभी हम किसी चलचित्र के माध्यम से भी कुछ ऐसी घटनाओं को देखते है जिन्हे देखकर हमें अपने आंखो पर विश्वास नहीं होता है। हम सोचने पर विवश हो जाते है कि ऐसा संभव है और कभी–कभी हम इसे केवल कल्पना के अर्थ में ही विचार कर अपने आप को वही पर सिमित कर लेते है। इस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। हम योग के शिक्षार्थी है। हम यहां महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित पतंजलि योगसूत्र में वर्णित अष्टसिद्धियों का अध्ययन करेगें। जैसा कि, नाम से ही स्पष्ट हो रहा है– अष्टसिद्धि, अर्थात् आठ सिद्धियां।

अष्टसिद्धि दो शब्दो अष्ट और सिद्धि से मिलकर बना है। जहां पर अष्ट शब्द का अर्थ है– आठ और सिद्धि का शाब्दिक अर्थ है– पूर्णता, प्राप्ति, अर्थात् आठ प्रकार की पूर्णता, प्राप्ति या सफलता। जब हम पतंजलि योगसूत्र का अध्ययन करते है तो हमे तिसरे पाद विभूतिपाद में महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित 20 से अधिक विभूतियों का वर्णन स्पष्ट प्राप्त होता है। जिस पर महर्षि ने योग साधक को सावधान करते हुये उसे योग पथ पर निरंतर लगे रहने के लिए कहा है। ये सिद्धियां योग के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति में विघ्न माने गये है। जब हम इन सिद्धियों की बात करते है तो महर्षि पतंजलि के अनुसार ये अष्ट सिद्धियां साधक में उसके भूतजय की स्थिति प्राप्त करने के पश्चात प्राप्त होती है। भूतजय के पश्चात ही साधक में अणिमा आदि सिद्धियां स्वतः ही प्रकट हो जाती हैं। जिसके लिए महर्षि पतंजलि सूत्ररूप में वर्णन करते हुए कहते हैं–

ततो अणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातष्च।

(प.यो.सू 3/45)

अर्थात्, भूतजय से अणिमा आदि सिद्धियां प्रकट हो जाती है, कायसम्पत् तथा उन भूतों के विषयों सें किसी भी प्रकार का विचलन नहीं आने पाता।

इस प्रकार, साधक में तीन प्रकार की योग्यता अष्टसिद्धि, कायसम्पत् तथा पंचमहाभूतों के विषयों से विचलन न होने की अवस्था आ जाती है। इसी प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता में भी हमें अनेक विभूतियों का वर्णन देखने को मिलती है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने जो स्वयं में एक योगेश्वर थे। योगेश्वर वह होता है जो स्वयं में एक योगी हो तथा दूसरों में भी योग जागृत करने की स्थिति में होता है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अपने आपको अनेक विभूतियों से युक्त बताया। यहां तक श्रीमद्भगवद्गीता का 10वाँ अध्याय पूर्णरूप से विभूतियों पर ही आधारित है।

वर्तमान समय में भी हम सभी ने अनेक योगियों को सुना है जिनके विषय में सुनकर हमें आश्चर्य होता है। अनेक ऐसे योगी हुए जिन्होने अपने जीवनकाल में ही ऐसे कार्य किये जिन्हे सुनकर हमें साधारणतः विश्वास नही होता है। कबीर, रहीम, रसखान, तुलसी, इकबाल, नानक, महावीर स्वामी, लाहड़ी महाशय, तैलंग स्वामी, श्री युक्तेश्वर जी, परमहंस योगानन्द, स्वामी श्री परमानन्द जी, देवराहा बाबा आदि ऐसे ही योगी थे। जो इन विभूतियों से ओत–प्रोत थे। इन योगियों पर प्रकृति के बंधन कार्य नही कर सकें। इन्होने आवश्यकता पड़ने पर इन बंधनो और नियमों को भी बदल दिया।

जब हम अष्टसिद्धियों की बात करते है तो हमे आठ प्रकार की सिद्धि का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व वशित्व आते है। इन अष्टसिद्धि की प्राप्ति योग साधक को उसके भूतजय तक की दूरी तय करने पश्चात प्राप्त होता है। अर्थात् योग पथ पर लगे हुए योगपथिक को उसके निरंतर योग मे लगे रहने पर क्रमोन्नत साधना में विकास करते हुए इन सिद्धियों, विभूतियों की प्राप्ति होती है। हमारे प्राचीन ग्रंथो मे भी इन अष्टसिद्धियों के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। विशेषकर हनुमान चालीसा में एक प्रसंग आता है जब माता सीता ने प्रसन्न होकर हनुमान जी को अष्टसिद्धि और नवनिधि में सिद्ध होने का आशीर्वाद प्रदान किया था। इसी प्रसंग को हनुमान चालीसा में बाबा तुलसी ने भी व्यक्त किया जिससे आज हम सभी परिचित है। हनुमान चालीसा की बहुत ही प्रसिद्ध पंक्ति है ''अष्टसिद्धि नव निधि के दाता, असवर दीन जानकी माता'' अर्थात् हनुमान जी स्वयं तो इन विभूतियों से युक्त है ही, साथ वे दुसरो को भी इन विभूतियों को प्रदान करने का सामर्थ्य रखते है।

इन अष्टसिद्धि को प्राप्त करने के लिए ही महर्षि ने अष्टांग योग का वर्णन पतंजलि योगसूत्र में किया है। जहां तक प्रतीत होता भी है कि यदि कोई योगाभ्यासी इन अष्टांग योग में वर्णित साधना पद्धति का पालन कर योग में पूरे मनोयोग से लगता है। तो वह निश्चित रूप से सामाजिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ योग की इन विभूतियों तक की दूरी तय कर लेंगा। ये अष्टसिद्धि एक साधक के स्वयं के साधना पर निर्भर करती है। महर्षि पतंजलि ने इस कारण स्वरूप ही इसे विभूतिपाद में समाधि के वर्णन के पश्चात प्रस्तुत किया हैं।

अब हम इन अष्टसिद्धियों को अलग–अलग अध्ययन करेगें–

9.2.1 अणिमा

सिद्धियों में पहली सिद्धि अणिमा है। जिसका शाब्दिक अर्थ है अणु के समान या अणुवत हो जाना। इस भौतिक जगत में अणु को ही सबसे सुक्ष्म इकाई माना गया है। जिस प्रकार शरीरिक संरचना में कोशिका को सबसे सुक्ष्मतम इकाई माना जाता है। उसी प्रकार इस भौतिक संसार में अणु को इसकी सबसे सुक्ष्मतम इकाई कहा जाता है। अणु पदार्थ की वह अवस्था है जिसे कोई साधारण मनुष्य अपने सामान्य आंखों से नहीं देख सकता है। ठीक इसी प्रकार जब साधक इस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है तो वह अपने को अणु के समान सुक्ष्म करने की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। जिससे साधक आवश्यकता पड़ने पर कहीं भी जा सकता है। कोई भी कार्य अगोचर की स्थिति में रहकर पूर्ण कर सकता है।

इसके अतिरिक्त अणिमा सिद्धि को प्राप्त करने से साधक को सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है।

9.2.2 महिमा

अष्टसिद्धियों में दूसरी सिद्धि महिमा सिद्धि के रूप में जानी जाती है। महिमा एक संस्कृत शब्द है जिसका सामान्य अर्थ है महानता। इस प्रकार महान, विशाल, बड़ा आदि अनेक अर्थ निकाले जाते है। महिमा सिद्धि को प्राप्त करने पर साधक अपने शरीर को आवश्यकता पड़ने पर असीमित रूप से विशाल कर सकता है। यह अणिमा सिद्धि के विपरीत कार्य करता है। हमारे पौराणिक ग्रंथो मे ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। जब आवश्यकता पड़ने पर साधक के द्वारा इस सिद्धि का प्रयोग किया गया। लंका दहन करने के लिए तथा कुंभकरण से युद्ध होने पर हनुमान जी ने विशाल रूप धारण किया था। एक अन्य प्रसंग प्राप्त होता है जिसके अनुसार, जब राजा बलि अपना 100 वां यज्ञ कर रहे थे। तब भगवान विष्णु वामन का वेश धारण कर राजा बलि से तीन पग भूमि दान में मांग लेते है और जिसे राजा बलि ने स्वीकार कर लिया और भगवान विष्णु जो कि, एक वामन के वेश में थे केवल तीन पग में ही तीनों लोको को उन्होनें नाप लिया था और राजा बलि को स्वयं को भी दान (समर्पित) करना पड़ गया था।

इसी प्रकार साधक मे, ईश्वर की महिमा भी प्रकट हो जाती है। जो स्थिति भगवान की होती है। ठीक उसी प्रकार महिमा को प्राप्ति वाले साधक की हो जाती है।

9.2.3 लघिमा

अष्टसिद्धियों मे तिसरी सिद्धि है लघिमा, यह एक संस्कृत शब्द है जिसका सामान्यतः अर्थ होता है– हल्कापन। अगर हम हिन्दी भाषा के अनुसार देखे तो लघु से तात्पर्य छोटे होने की अवस्था या भाव लिया जाता है। लेकिन योगसूत्र में लघिमा को हम एक सिद्धि के रूप मे हम अध्ययन करते है। जिससे तात्पर्य है साधक का अपने शरीर को इतना हल्का बना लेना जिससे वह आकाश गमन की अवस्था को प्राप्त कर ले। अब प्रश्न उठता है कि यह शरीर का हल्कापन कैसा होता है? इस पर हमारे ग्रंथो में प्राप्त होता कि साधक का शरीर रूई के समान भारहीन हो जाता है। जिस प्रकार रूई बहुत हल्की होती है। ठीक उसी प्रकार साधक भी आवश्यकतानुसार अपने आपको रूई के समान भारहीन कर लेता है। इस सिद्धि के द्वारा साधक एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से गमन करने योग्य हो जाता है। विशेष रूप से आकाश गमन की योग्यता साधक को प्राप्त हो जाती है। इस सिद्धि का उल्लेख ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त योग साधक साधना करते हुये अपने विकारों का भी समन करता जाता है। जिससे उसके अंदर के काम, क्रोध, लोभ आदि विकार धीरे–धीरे नष्ट हो जाते है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि, योग की पराकाष्ठा में पहुचां हुआ योगी का स्वभाव बालवत् हो जाता है। यह बालवत् स्वभाव भी 'लघिमा' है। इस स्थिति को प्राप्त हुये उस महापुरूष के लिए कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता है। महाभारत के एक प्रसंग के अनुसार योगेश्वर श्री कृष्ण ने राजसूय यज्ञ में स्वयं से जुठे पत्तल उठाने और चरण धोने का कार्य लिया। महात्मा बुद्ध ने अपने एक रूग्ण शिष्य को स्वयं स्नान कराने लगे। पूज्य परमहंस महाराज जी ने दर्द से कराहते एक शिष्य के चरण स्वयं दबाने लगे।

9.2.4 गरिमा

अष्टसिद्धियों में चौथी सिद्धि को गरिमा सिद्धि के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धि को प्राप्त साधक आवश्यकता पड़ने पर अपने शरीर का भार असिमितरूप से बढ़ा सकता है। अष्टसिद्धियों के

विषय में बात की जाये तो गरिमा सिद्धि से तात्पर्य भारीपन से ही लिया जाता है। इस सिद्धि का वर्णन हमें ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी प्राप्त होता है।

इस सिद्धि के प्रयोग के विषय में महाभारत में हमे एक प्रसंग प्राप्त होता है जिसके अनुसार, एक समय भीम को अपने बल पर बहुत अधिक अभिमान हो गया था और वह अपने आपको संसार का सबसे अधिक बलशाली पुरूष समझता था। एक बार भ्रमण करते हुए भीम का सामना हनुमान जी से हुआ। उस समय हनुमान जी भीम का अहंकार समाप्त करने के लिए वृद्ध वानर का रूप धारण कर भीम के रास्ते में लेट गये और जब भीम उधर से गुजरता है तो उसने देखा एक कि, एक वृद्ध वानर पूंछ फैलाकर पूरा रास्ता रोके बैठा है। भीम ने उस वृद्ध वानर से तुरंत पूंछ हटाने को कहा। उस पर वानर ने कहा मै वृद्ध होने के कारण अपनी पूंछ हटाने में असमर्थ हूं आप स्वयं ही इसे हटा ले। तब भीम पूंछ हटाने लगे लेकिन पूंछ थोड़ा भी नही हटी। तब भीम ने अपनी पूरी शक्ति का इस्तेमाल किया, लेकिन वह पूंछ जरा सी भी अपने स्थान से नहीं हटी। तब भीम को अपने बल का पता चला और उसका अभिमान नष्ट हो गया।

9.2.5 प्राप्ति

अष्टसिद्धियों में प्राप्ति सिद्धि पाँचवी सिद्धि के रूप में जानी जाती है। इस सिद्धि के फलस्वरूप साधक अपनी इच्छानुसार कोई भी पदार्थ प्राप्त कर सकता है। यह सिद्धि साधक को असिमित सामर्थ्यवान बना देता है। यह सिद्धि साधक में उसके इन्द्रियों से प्राप्त होने वाली सिद्धि के रूप में जानी जाती है। इस सिद्धि का उपयोग करके साधक किसी भी स्थान, ग्रह, उपग्रह कही भी गमन कर सकता है। इस सिद्धि से साधक असंभव कार्य को भी संभव बना लेता है।

इसी सिद्धि का प्रयोग कर साधक जब चाहे कही भी गमन तो कर ही सकता है साथ ही साथ जब चाहे अदृश्य भी हो सकता है। हनुमान जी ने लंका में विभीषण का घर खोजने और माता सीता का पता लगाने आदि अनेक कार्यो के लिए इसी प्राप्ति सिद्धि का प्रयोग किया।

इस प्रकार प्राप्ति सिद्धि एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धि के रूप में जाना जाता है। जिसका उपयोग कर साधक किसी भी कार्य को करने सक्षम हो जाता है।

9.2.6 प्राकाम्य

अष्टसिद्धियों के अन्तर्गत जो छठवीं सिद्धि है उसे प्राकाम्य सिद्धि के रूप में जाना जाता है। प्राकाम्य सिद्धि का सामान्य अर्थ होता है इच्छाओं की अनभिघात स्थिति अर्थात् बिना किसी रूकावट के इच्छाओ की पूर्ति। इस सिद्धि को प्राप्त साधक जो भी इच्छा करता है बिना किसी रूकावट के तत्काल ही वह पूर्ण हो जाती हैं। एक प्रकार से यह इच्छाओं के अप्रतिरोध्य पूर्णता को प्रकट करता है। यहीं इच्छा की स्वतंत्रता के रूप में जाना जाता है। इस सिद्धि का भी वर्णन हमें ब्रह्म वैवर्त पुराण में देखने को मिलता है।

इन सिद्धियों के फलस्वरूप ही साधक अनके प्रकार के कार्य को सरलता से पूर्ण कर लेता हैं। वस्तुतः ये सिद्धियां अभी उस साधक के विघ्न ही है। अभी साधक को अपनी योग साधना को जारी रखने की आवश्यकता है। साधक को इन सिद्धियों में बहुत अधिक आश्रित नहीं रहना चाहिए तथा योग के अन्तिम लक्ष्य की तरफ ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए।

9.2.7 ईशित्व

अष्टसिद्धियों में ईशित्व सिद्धि सांतवीं सिद्धि के रूप में जानी जाती है। इस सिद्धि के फलस्वरूप साधक में उत्पत्ति, विनाश और लय करने का सामर्थ्य आ जाता है। जिससे साधक में ये तीनों ही योग्यता आ जाती है। ये तीनों ही गुण ईश्वर में पाये जाते है और साधक में भी ये तीनों गुण हो जाने के कारण साधक स्वयं में ईश्वर के अनुरूप प्रभाव वाला हो जाता है। अब साधक सामान्य प्राणियों पर आसानी से प्रभाव स्थापित कर सकने की स्थिति को प्राप्त कर लेता हैं।

जैसा कि, ईशित्व नाम से ही स्पष्ट हो पा रहा है कही न कही साधक उस ईश्वर के सदृश स्थिति को प्राप्त कर लेता है। लेकिन अभी साधक को योग पथ में लगे रहने की आवश्यकता है। उसे अभी अभिमान न आने पाये इसके लिए प्रयत्न निरंतर जारी रखने की आवश्यकता है।

9.2.8 वशित्व

अष्टसिद्धियों में वशित्व सिद्धि आठवी सिद्धि के रूप में जानी जाती है। अष्टसिद्धि के अन्तर्गत यह अंतिम सिद्धि के रूप में जाना जाता है। जिसका सामान्य अर्थ है– दूसरों को वश में करना। इस सिद्धि को प्राप्त कर लेने के बाद साधक किसी पदार्थो को अपने वश में कर सकने योग्य हो जाता है। साधक के अन्दर सभी जड़–चेतन पदार्थो को अपने वश करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

वशित्व जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि, वश की प्राप्ति। साधक योग मार्ग में क्रमशः विकास करते हुए इस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

इस सिद्धि से साधक में एक और सामर्थ्य आ जाता है साधक किसी भी कर्म से निर्लेप रहने की स्थिति को प्राप्त कर लेता है अर्थात् साधक का कर्म अशुक्ल–अकृष्ण कर्म की स्थिति वाला हो जाता है।

9.3 महापुरूषों एवं अन्य प्राचीन योगग्रंथों के अनुसार अष्टसिद्धि की विवेचना

अभी तक हमने अष्टसिद्धि का जो वर्णन प्राप्त किया है। वह महर्षि पतंजलि कृत पतंजलि योगदर्शन के अनुसार प्राप्त किया है। अष्टसिद्धि के अन्तर्गत हमने अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा आदि सिद्धियों का अध्ययन किया तथा इनका एक–एक करके हमने विश्लेषण किया। हमारे अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी अष्ट सिद्धियों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ बहुत से महापुरूषों ने भी इन अष्टसिद्धियों के विषय में अपने मत दिये है। इन महापुरूषों ने केवल वर्णन ही नहीं किया है। इन सिद्धियों का उन्होने अपने जीवन मे अनुभव एवं उपयोग भी किया है।

अब हम कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथो और योगियों द्वारा अष्ट सिद्धि पर दिये गये वर्णन को देखेंगे–

9.3.1 श्रीमद् भागवत् के अनुसार–

श्रीमद् भागवत् में अनेक प्रसंगो के साथ–साथ हमें अष्टसिद्धियों का भी वर्णन प्राप्त होता है। यहां पर हमें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामावसायित्व, अनुर्मिमत्व, दूर श्रवण सिद्धि, दूर दर्शन सिद्धि, मनोजव सिद्धि, कामरूप सिद्धि, परकाया प्रवेश, स्वच्छन्द मरण, देवक्रीड़ानुदर्शन, यथा संकल्प संसिद्धि, अप्रतिहतगति और आज्ञा, त्रिकालज्ञता, अद्वन्द्वता, परचित्ताधभिज्ञता, प्रतिष्टम्भ, अपराजय, और ख्याति। इस प्रकार कुल 24 सिद्धियों का वर्णन हमे प्राप्त होता है। इन सिद्धियों में से अधिकतर सिद्धियां साधक को उसकी साधना के अन्तर्गत प्राप्त हो जाता है। ये सिद्धियां साधक को उसकी योग साधना के लिए रूकावट का कार्य करती है।

श्रीमद् भागवत् में भगवान श्री कृष्ण के अनेक प्रसंग प्राप्त होते है। श्री कृष्ण स्वयं में एक योगी थे। उन्हे योगेश्वर भी कहा जाता है। श्रीमद् भागवत् मे स्थान–स्थान पर योग शब्द का वर्णन प्राप्त हुआ है। इस प्रकार कही न कही हमारे प्राचीन ग्रंथो का झुकाव योग की तरफ देखने को मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि, योग एक अत्यंत प्राचीन विधा है। जो इस भारत की भूमि से निकली और आज पूरे विश्व में फैल रही है।

9.3.2 आद्य शंकराचार्य के शब्दों में अष्टसिद्धियां–

आद्य शंकराचार्य अपने समय के एक महान योगी और साधक के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे अपने समय के पहुचे हुए योगी थे। आद्य शंकराचार्य साक्षात् शिव अवतार माने जाते है। आद्य शंकराचार्य ने भी अष्टसिद्धि यों के विषय में अपना मत प्रदान किया है। शंकराचार्य जी के अनुसार जन्म सिद्धि, शब्द ज्ञान सिद्धि, शास्त्र ज्ञान सिद्धि, आधिभौतिक तापसहन शक्ति, आध्यात्मिक ताप सहन शक्ति, आधिदैविक तापसहन शक्ति, विज्ञान सिद्धि, विधा सिद्धि। इस प्रकार इन अष्टसिद्धियों का वर्णन आदि शंकराचार्य ने किया।

आद्य शंकराचार्य जो कि स्वयं मे शिव के अवतार माने जाते है और शिव को ही हमारे यहां आदि योगी कहा जाता है। इस प्रकार आद्य शंकराचार्य स्वयं में ही योगी थे। उनके द्वारा वर्णित अष्ट सिद्धियां भी अपने आप में पूर्णतः योग के मार्ग पर आधारित सिद्धियां है। उनके द्वारा बताये गये अष्ट सिद्धियां योग के मार्ग पर अग्रेसर रहने वाले एक योगी को ही प्राप्त हो सकता है। ये सिद्धियां सरलता से नहीं प्राप्त की जा सकती है। उसके लिए पूर्णतः समर्पित भाव से योग मे लगने की आवश्यकता होती है। ये अष्ट सिद्धियां योग में लगने वाले साधक को उसके योग की उच्च अवस्था में ही प्राप्त होती है। साधक को सिर्फ योग साधना के सही क्रम को समझकर लगने की आवश्कता है।

9.3.3 पं श्रीराम शैर्मा आचार्य के अनुसार अष्टसिद्धियां–

पं श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी अष्टसिद्धियों का वर्णन किया है। उन्होने योग और आध्यात्म से जुड़ी अनेक पुस्तको का लेखन किया है। उन्होने अपने पुस्तक 'साधना से सिद्धि' में अष्टसिद्धियों का वर्णन किया है। जिसमें उन्होने आत्म सिद्धि, विविधा सिद्धि, ज्ञान सिद्धि, तप सिद्धि, क्षेत्र सिद्धि, देव सिद्धि, शरीर सिद्धि तथा विक्रिया सिद्धि इस प्रकार इन आठ सिद्धियों का वर्णन पं श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा किया गया है। पं श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी पतंजलि योगसूत्र पर भाष्य लिखा है। जिसको हम 'योगदर्शन' के रूप मे जानते है। पं श्रीराम शर्मा जी द्वारा वर्णित ये अष्ट सिद्धि उनके स्वयं के अनुभव पर आधारित है। अतः अष्ट सिद्धियों की सत्यता पर कोई संशय भी प्रतीत नही होता है क्योकि पं श्रीराम शर्मा जी अपने आपमें स्वयं एक साधक थे।

पं श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने योग एवं साधना के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये है। बचपन से ही इनका झुकाव योग के प्रति दिखाई पड़ता है। इन्होने अपने जीवन काल का अधिकतर समय साधना मे ही बिताया। इन्होन बचपन से ही अपने सहपाठियों को भी साधना सिखाया करते थे। अल्प

आयु में ही पं मदनमोहन मालवीय जी ने इन्हे गायत्री मंत्र की दिक्षा दे दी थी। जिसकी साधना इन्होने जीवनभर की। इन्होने तीन हजार से अधिक पुस्तको की रचना भी की।

9.4 सारांश

योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने कई प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया है। हम सभी जानते है योगदर्शन चार पादों में विभक्त है। जिसमें तृतीय पाद विभूतिपाद के नाम से ही जाना जाता है। इसी पाद में महर्षि ने अनेक प्रकार के विभूतियों, सिद्धियों का वर्णन किया है। महर्षि ने विभूतिपाद के ही 3/45 वें सूत्र में पहली बार अष्टसिद्धियों की चर्चा की है। इन अष्टसिद्धियों में अलग–अलग आठ प्रकार के सिद्धि का वर्णन आता है। जो कि योग साधना में लगे साधक को उसके साधना के उच्च अवस्था पर पहुचने पर प्राप्त होती है। महर्षि के अनुसार इन सिद्धियों के प्राप्त होने पर साधक को इनसे सतर्क रहने की आवश्यता रहती है। क्योकि ये सिद्धियां साधक को निवृत्ति से हटाकर प्रवृत्ति की तरफ ले जाती है। यहा तक की साधक की संपूर्ण साधना को भी नष्ट कर उसे अंत में इन प्राप्त सिद्धियों से भी विमुक्त कर देती है। इसलिए महर्षि ने इन सिद्धियों को योग में अन्तराय की संज्ञा दी है। साधक को इनसे सतर्क रहने की तथा निरंतर अपने लक्ष्य की तरफ तीव्र गति से चलने की आवश्यकता रहती है।

इन अष्ट सिद्धियों की विवेचना हमारे बहुत से अन्य प्राचीन ग्रंथो मे भी देखने को मिलती है। योग का संपूर्ण ग्रंथ श्रीमद्भगवत् गीता, पुराणों, उपनिषदों, वेदों आदि जैसे अत्यंत प्राचीन ग्रंथो मे इन अष्ट सिद्धियों का वर्णन होने से इनकी प्रामाणिकता का पता हमे चलता है। इसी के साथ–साथ बहुत से महापुरूषों ने भी इन सिद्धियों को मान्यता दी है। श्री कृष्ण, जो स्वयं में योगेश्वर कहे जाते है। उन्होने स्वयं को इन विभूतियों, सिद्धियों से युक्त बताया है। हनुमान जी को भी इन सिद्धियों से युक्त होने के कई प्रसंग हमे अपने प्राचीन ग्रंथो में प्राप्त होते है।

आधुनिक युग में भी ऐसे कई महापुरूषो का नाम हमें सुनने में आता है। जिनको सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि, कहीं न कही योग मार्ग पर चलने पर ये सिद्धियां और विभूतियां अवश्य ही साधक को प्राप्त होती है। नानक, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कबीर, तुलसी, रहीम, रसखान, संत रविदास, रैदास, ईसा मसीह, इकबाल, मंसूर, तैलंग स्वामी, लाहड़ी महाशय, महाअवतार बाबा जी, युक्तेश्वर जी, परमहंस योगानंद जी, परमहंस परमानंद जी, पं श्रीराम शर्मा आचार्य जी, देवराहा बाबा आदि ऐसे अनेक महापुरूष हुए जो इन ऋद्धियों, सिद्धियों, विभूतियों से युक्त हुयें। इन महापुरूषों की रहनी देखकर इनके

जीवन में घटी घटनाओं का अध्ययन करने के पश्चात हम कह सकते है कि, इन महापुरूषों पर प्रकृति के नियम काम नहीं करते है।

इस विश्लेषण से हम कह सकते है कि, प्राचीन समय से चली आ रही यह योग परंपरा आज भी है। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो ही कालों में रही है। आवश्यकता है। आवश्कता है, इस योग विधा को सभी रूप को समझकर उस पर चलने की। जब यह योग अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। तो वास्तविक योग की प्राप्ति हो जाती है।

9.5 शब्दावली

विभूतियां – दिव्य या अलौकिक शक्तियां

अष्टसिद्धि – आठ प्रकार की सिद्धि

सिद्धि – सफलता

पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

ऋद्धि – संपन्न्ता

अग्रेसर – पहले करने वाले

पराकाष्ठा – सर्वोच्च स्थिति

अन्तराय – विघ्न, रूकावट

पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

9.6 संदर्भित ग्रंथ

1. योगसूत्र – वाचस्पति मिश्र
2. पतंजलि योग प्रदीप – ओमानंद तीर्थ
3. पतंजलि योग सूत्र – श्री श्री रविशंकर
4. योग दर्शन – पं श्रीराम शर्मा आचार्य
5. योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी

9.7 संबंधित प्रश्न

9.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. अष्टसिद्धियों की विवेचना कीजिए।
2. प्राप्ति एवं प्राकाम्य में अन्तर उदाहरण के साथ स्पष्ट करे।
3. श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित अष्टसिद्धियों का विस्तार से विवेचना कीजिए।

9.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. महिमा सिद्धि की विवेचना कीजिए।
2. अणिमा सिद्धि की विवेचना कीजिए।
3. ईशित्व व वशित्व में अन्तर बताये।
4. भूतजय का अर्थ बताइये।
5. पंच महाभूत किसे कहते है।

चतुर्थ खण्ड परिचय

इकाई. 10– सिद्धियों के प्रकार, निर्मल चित्त की अवधारणा, समाधि के माध्यम से प्राप्त सिद्धियों का महत्व

इकाई. 11– धर्म मेघ समाधि, विवेक ख्याति एवं कैवल्य

इकाई. 12 – कर्म, कर्म के प्रकार, कर्मफल सिद्धान्त

इकाई–10 सिद्धियाँ

सिद्धियों के प्रकार, निर्मल चित्त की अवधारणा, समाधि के माध्यम से प्राप्त सिद्धियों का महत्व।

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 सिद्धियों के प्रकार

10.2.1 समाधि से प्राप्त सिद्धियां

10.2.2 संयम से प्राप्त सिद्धियां

10.2.3 जन्मादि से प्राप्त पांच सिद्धियां

10.3 चित्त की निर्मलता

10.4 समाधि से प्राप्त सिद्धियों का महत्व

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 संदर्भ ग्रंथ

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

10.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

10.0 प्रस्तावना–

साधना के माध्यम से सिद्धि योगदर्शन का एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। हम अपने प्राचीन ग्रंथो में प्रायः विवरण पाते है कि योग साधना मे लगे साधक को योग के साधना के फलस्वरूप अनेक दिव्य एवं अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है। इन्हे ही योग में विभूतियाँ या सिद्धियाँ आदि के नाम से जाना जाता हैं। हम जानते है कि पतंजलि योगसूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि है जिनमें चार पाद है इन चारों पादों मे तिसरा पाद विभूतिपाद के नाम से ही जाना जाता है। इस पाद में महर्षि ने अनेक प्रकार के सिद्धियों का वर्णन किया है। जिसकी जानकारी सभी योग साधकों को होना आवश्यक है।

इन सिद्धियों के अध्ययन से सामान्य मनुष्य भी योग के प्रति जिज्ञासा को प्राप्त करेंगा तथा वह इस योग साधना के लिए प्रयत्न भी करेंगा। जब तक साधन का ज्ञान नहीं होगा। मार्ग का ज्ञान नहीं होगा। तब तक कोई साधक उस पर चलने में असहजता को प्राप्त करेंगा। इसलिए महर्षि ने अपने ग्रंथ में योग की समग्ररूप से व्याख्या की है। ताकि आरम्भिक और योग में लगे संयमी साधक भी योग की जानकारी प्राप्त कर उस पर चल सकें।

साथ ही साथ उन्हे यह भी ज्ञान हो जाएं कि ये सिद्धियां और विभूतियां कब और किस प्रकार से प्राप्त होती है। इनका क्या महत्व है। इनसे कब सतर्क रहना है। कब इनका उपयोग करना है। साधक इनसे पहले से ही सतर्क रहता है जिससे वह इनके मार्ग से अपने आपको बचाते हुए योग भ्रष्ट होने से भी बच सकता है।

महर्षि ने इन सिद्धियों का वर्णन इसलिए भी कर दिया है ताकि साधक आवश्यकतानुसार इनका सही इस्तेमाल कर सकें और समाज को सही मार्ग पर योग मार्ग पर भी चलने की प्रेरणा कर सके ताकि योग मार्ग पर चलने वाले सभी बंधुओ को लाभ प्राप्त हो सकें।

प्रस्तुत इकाई में पतंजलि योगसूत्र में वर्णित भिन्न–भिन्न सिद्धियों एवं उनमें प्राप्त होने वाले उपलब्धियों का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपमें योग एवं उसके विभूतियों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो सकेगा। आपको योग साधना एवं उनके सिद्धियों की सही–सही जानकारी प्राप्त हो सकेगीं।

आप चित्त की अवधारणा, मन की निमर्लता, समाधि से प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रकार की सिद्धियों उनके महत्व आदि अनेक योग के महत्वपूर्ण अंगो को सरलता एवं सहजता से समझकर और योग के वास्तविक मार्ग पर चल सकेंगें।

इस योग मार्ग पर चलने पर एक साधक को निश्चित रूप से योग के परिणाम स्वरूप एक निर्मल मन और उसके साथ–साथ अनेक प्रकार की विभूतियां एवं सिद्धियों की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाती है और साधक दृढ़ता पूर्वक और तीव्र वेग से अपने परम लक्ष्य की तरफ अग्रेसर होता हुआ।

योग के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य तक की यात्रा को पूर्ण कर लेता है। महर्षि ने इसिलिए ही योग दर्शन के अन्तिम पाद का नाम कैवल्यपाद का नाम दिया क्योकि मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी कैवल्य ही है।

10.1 उद्देश्य–

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों को पतंजलि योगसूत्र में वर्णित विभिन्न योग विभूतियों एवं सिद्धियों से अवगत कराना है।
- इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सिद्धियों के विभिन्न प्रकारों से भली–भांति परिचित हो सकेगे।
- इस इकाई के माध्यम से आप निर्मल चित्त की अवधारणा को समझ सकेगे।
- इस इकाई के द्वारा आप पतंजलि योगसूत्र के तिसरे पाद विभूति पाद मे वर्णित संयम से प्राप्त होने वाले विभिन्न विभूतियों से अवगत हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम से आप समाधि के माध्यम से प्राप्त होने वाले अणिमादि सिद्धियों से भी अवगत हो सकेंगे।
- आप अवगत हो सकेंगे कि योग साधना के माध्यम से प्राप्त होने वाली सिद्धियां वास्तविक होती है।
- आप इस तथ्य से अवगत हो सकेंगे कि योग साधना एक विज्ञान की तरह कार्य करता हैं तथा हर कार्य का परिणाम होता है।
- आप इस तथ्य से अवगत हो सकेंगे कि हमारी प्राचीन योग साधना की पद्धति जो हजारों वर्षो से चली आ रही है। आज भी उसी तरह प्रासंगिक है।
- हमे अपने प्राचीन योग विधा पर गर्व का अनुभव प्राप्त हो सकेंगा।
- हम इस बात को समझ सकेंगे कि हमारे प्राचीन ऋिषियों, मुनियों ने किस प्रकार योग की साधना के बल पर अपने जीवन के परम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त किया तथा समाज को भी उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

- हम इस बात को भी समझ सकेंगे कि योग मार्ग पर लगा हुआ। योग साधक अपनी साधना का प्रदर्शन नहीं करता है।

10.2 सिद्धियों के प्रकार–

हमारे प्राचीन योग ग्रंथो में सिद्धियों के अनेक प्रकार हमें देखने को मिलते हैं लेकिन हम यहां कुछ महत्वपूर्ण सिद्धियों पर पतंजलि योगसूत्र के अनुसार दृष्टिपात करेंगे। महर्षि पतंजलि ने पतंजलि योगसूत्र में समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों, संयम से प्राप्त होने वाली सिद्धियों तथा जन्मादि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन किया है। अब हम इनका एक–एक करकें विस्तारपूर्वक विवेचना एवं विश्लेषण करेंगे।

10.2.1 समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धियां–

जैसा कि, हमने अभी तक समझ लिया है कि, समाधि योग का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं योग का अन्तिम लक्ष्य तक पहुचां देने वाला साधन है। समाधि को महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के अंतिम साधन के रूप में वर्णित किया हैं। समाधि का वर्णन महर्षि पतंजलि ने पतंजलि योगसूत्र के तिसरेपाद विभूति पाद में किया है। महर्षि नें अष्टांग योग के आठ साधनों में से प्रथम पांच साधन को बहिरंग साधन तथा अंतिम तीन साधन को अंतरंग साधन के रूप में वर्णित किया है। समाधि की अवस्था तक की यात्रा पूर्ण करने वाले साधक को उसके साधना के परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार की सिद्धियों एवं विभूतियों की प्राप्ति होती है। हम यह कह सकते है कि, समाधि की प्राप्ति के पश्चात ही साधक अपनी योग के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तथा योग की वास्तविक स्थिति को प्राप्त कर पाता है। अधिकांशतः समाधि को योग की ही संज्ञा दी जाती है।

महर्षि वेद व्यास ने अपने योग ग्रंथ व्यास भाष्य में योग को परिभाषित करते हुए निर्णय दिया है–

योगः समाधि।

(यो.भाष्य 1/1)

अर्थात्, समाधि ही योग है।

इस प्रकार महर्षि वेद व्यास ने निर्णय दिया है कि, समाधि ही योग है। महर्षि पतंजलि ने भी समाधि को योग की अंतिम अवस्था के रूप में माना है। महर्षि पतंजलि ने अनुसार समाधि की अवस्था को प्राप्त

किये बिना कोई भी साधक योग के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य की अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकता है और बिना कैवल्य के साधक को अपने परमलक्ष्य निज स्वरूप, मूल स्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं है।

हम कह सकते है कि, समाधि की प्राप्ति के पश्चात ही साधक को उसके परमपुरूषार्थ की प्राप्ति संभव हो पाती है। समाधि की पूर्णता के पश्चात ही साधक को तत्व का साक्षात्कार प्राप्त होता है। जिसे अपने यहां परम ज्ञान या वास्तविक ज्ञान की संज्ञा दी गई है। जिसको जानने के बाद ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते है। जो स्थिति, अवस्था ज्ञेय की है। वही स्थिति और अवस्था ज्ञाता की भी हो जाती है। वह ज्ञाता भी ज्ञेय के समान अनेक विभूतियों, ऋद्धियों और सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। ज्ञेय का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात ज्ञाता को अविधा से मुक्ति प्राप्त हो जाती हैं और वह कैवल्य की अवस्था को प्राप्त कर परमात्म स्वरूप निर्विकार, निर्विकल्प की अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

समाधि की अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात जैसे ही ज्ञाता का ज्ञेय से संबंध जुड़ता है। साधक अपने आत्मभाव को प्राप्त कर लेता हैं। जिससे वह परम में अवस्थित हुआ। परम की अनुभूति को प्राप्त करता लेता है। इस स्थिति को योग की भाषा में कैवल्य, परमलक्ष्य, परमपुरूषार्थ, निर्वाण आदि अनके नामों से जाना जाता है। इस स्थिति को जान लेता है वही उसका अनुभूव कर पाता है। यह वर्णन की विषय वस्तु नहीं है।

समाधि से भूतजय तथा अष्टसिद्धियों की प्राप्ति–

अधिकांश योग के ग्रन्थों में विभूतियों एवं सिद्धियों के मिलने के कारण के रूप में समाधि को ही प्रमुखता से मान्यता मिली है। समाधि की प्राप्ति के पश्चात साधक का चित्त पूर्णतः शुद्ध एवं निर्मलता को प्राप्त कर लेता है। समाधि की अवस्था को प्राप्त हुआ साधक सभी प्रकार के राग–द्वेष तथा काम–क्रोध से मुक्त रहता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के कारण ही साधक का चित्त निर्मल रहता है और निर्मल चित्त के कारण ही साधक को अनेक प्रकार की विभूतियों एवं सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। समाधि में ऐसी अनेक सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है। महर्षि पतंजलि ने पतंजलि योगसूत्र के विभूतिपाद में इन्ही विभूतियों एवं सिद्धियों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहुचने पर साधक जब पंचमहाभूतों के विभिन्न रूपों पर संयम करता है तो उस संयमी उच्च अवस्था को प्राप्त साधक को पंचमहाभूतों पर उसके साधना के परिणामस्वरूप ही पंचमहाभूतों पर विजय की प्राप्ति हो जाती है। इसका वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते है–

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः।

(प.यो.सूत्र 3/43)

अर्थात्, बाह्य जगत की भौतिक स्थिति में जो कुछ भी दिखाई–सुनाई पड़ता है उसमें कल्पना से रहित वृत्ति का प्रवाह ही महाविदेहावस्था है।

इस प्रकार की महाविदेहावस्था आ जाने पर साधक संसार के भौतिकता से प्रभावित हुये बिना पूर्णतः संकल्प–विकल्प रहित हो जाता है। इस महाविदेहावस्था के आ जाने पर प्रकाश पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता है, जिससे द्रष्टा और साधक के मध्य पड़ा आवरण भी क्षीण हो जाता है। विषय उठता है कि, यह आवरण किस वस्तु का है? तो यह आवरण है– राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों का। महाविदेहावस्था को प्राप्त साधक इन विकारों के बंधन से मुक्त हो जाता हैं। जिससे उसके चित्त पर पड़ा आवरण हट जाता है। इसके साथ ही साधक की बुद्धि प्रकाश से युक्त हो जाती है।

गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।

(श्रीमद् भगवद्गीता 5/21)

अर्थात्, बाह्य संसार के विषय–भोगों में अनासक्त हुआ पुरुष अन्तरात्मा के सुख को प्राप्त करता है। वह पुरूष परब्रह्म परमात्मा के मिलन से युक्त आत्मा वाला है इसलिए अक्षय सुख का अनुभव करता है।

यहां महर्षि पतंजलि भी यही कहते हैं कि, महाविदेहावस्था को प्राप्त साधक के प्रकाश पर पड़ा आवरण समाप्त हो जाता है और उसके बुद्धि में ईश्वरीय प्रकाश के आने में जो रुकावट थी, वह दूर हो जाती है।

इसके उपरांत साधक को भूतजय की प्राप्ति हो जाती है जिसके लिए महर्षि ने सूत्र दिया है–

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः।।

(प.यो.सूत्र 3/44)

अर्थात्, स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय तथा अर्थवत्त्व इन पाँच अवस्थाओं में संयम से भूतजय की प्राप्ति हो जाती है।

संसार के सभी जीवित प्राणीयों के जीवन की मूल कारण पंचमहाभूत है और इन पंचमहाभूतों की पांच तन्मात्राऐं ही इन पंचमहाभूतों का स्थूल स्वरूप है। जब इनका दृश्य प्रकट हो जाता है यही स्वरूप का प्रकट हो जाना है। यहां दृश्य स्थूल है और स्वरूप के स्पष्टता से ही सूक्ष्म तत्त्व समझ में आ जाता है। इनका अलग–अलग विश्लेषण करने की योग्यता ही इनका अन्वय करना है। इनकी सजातीयता व विजातीयता का विश्लेषण करना ही इनका अर्थवत्त्व है। इन्ही अवस्थाओं पर संयम दृढ़ हो जाने पर पंचमहाभूतों के विश्लेषण करने की योग्यता साधक में आ जाती है। यहीं से भूतों पर विजय प्राप्त हो जाती है। यह संयम साधक में क्रमानुगत अवस्था में आता है।

इस अवस्था के आ जाने पर साधक को अष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। इसी को महर्षि पतंजलि ने सूत्ररूप में व्यक्त करते हुए कहते है–

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च।।

(प.यो.सूत्र 3/45)

अर्थात्, उससे (भूतजय) अणिमादि सिद्धियां प्रकट हो जाती है, कायसम्पत् की प्राप्ति तथा पंचमहाभूतों के धर्मों से बाधा रहित अवस्था हो जाती है।

इस प्रकार, साधक को तीन प्रकार की योग्यता की प्राप्ति हो जाती है। योगी जब संयम के साधना द्वारा पंचमहाभूतों का विश्लेषण और उन पर विजय प्राप्त कर लेता है तब उस साधक के अन्दर अष्ट सिद्धियों का प्रकटीकरण हो जाता है। साथ ही साथ साधक को कायसम्यत् की प्राप्ति तथा पंचभूतों के धर्मो से बाधा रहित अवस्था प्राप्त हो जाती है। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियां हैं।

जब साधक इन विभूतियों की प्राप्ति कर लेता है। तब भौतिक माया शक्ति उन्हे तरह–तरह के लोभ माया मे भटकाने का प्रयास करती है। साधक को इन प्रलोभनों से सतर्क रहने की आवश्यकता रहती है। क्योकि साधक अपनी साधना के फलस्वरूप आत्मसाक्षात्कार के क्रम में अग्रीम पंक्ति पर खड़ा है। इसी स्थिति से दूर करने के लिए मायारूपी जाल साधक को तरह–तरह के प्रलोभनों मे ले जाने का प्रयास करती है।

साधक जब इन मायारूपी लोभों से प्रभावित नहीं होता है और अपनी योग साधना में निष्ठापूर्वक लगा रह जाता है। तब वह उस परम चेतना के साथ एकाकार कर लेता है। उसी के साथ वह उन विभूतियों, शक्तियों से युक्त हो जाता है। इससे साधक आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त कर स्वयं में उस परम चेतना के सदृश स्थिति वाला हो जाता है।

इस प्रकार साधक साधना के सही क्रम को समझकर तथा माया रूपी प्रकृति से प्राप्त ऋद्धियों एवं सिद्धियों से संयम के द्वारा योग पथ पर लगे रहकर तथा अष्टसिद्धियों रूपी सिद्धियों एवं विभूतियों से मोहित हुए बिना तथा इनकी उपेक्षा कर साधना में आगे बढ़ते हुए कैवल्य को प्राप्तकर आत्म साक्षात्कार को प्राप्तकर लेता है। इसके उपरान्त ये ऋद्धियां एवं सिद्धियां भी उस साक्षात्कार किये साधक के आधीन होकर ही कार्य करती है। इससे साधक लोक कल्याण करता हुआ। समाज का मार्गदर्शन भी करता है तथा समाज को सतपथ पर चलने की दिशा भी प्रदान करता है।

इस प्रकार योगी को सम्प्रज्ञात समाधि के फलस्वरूप भूतजय और भूतजय होने पर अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।

10.2.2 संयम से प्राप्त सिद्धियां–

संयम के द्वारा साधक को अनेक प्रकार की सिद्धियों एवं विभूतियों की प्राप्ति हो जाती है। महर्षि पतंजलि ने विभूतिपाद में इन्ही संयम से प्राप्त अनेक प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया है। संयम की साधना के द्वारा ही एक साधक अपने मन, इन्द्रियों, चित्त में उठने वाली लहरों इत्यादि को निरोध करने में सफलता प्राप्त कर सकता है। संयम से ही साधक का मन उसके नियंत्रण मे आने लगता है। इसलिए योग साधना में संयम का विशेष महत्व है। संयम से योग साधना में उच्च स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। उसी संयम साधना के फलस्वरूप साधक को योग में सभी प्रकार की विभूतियों, सिद्धियों एवं सफलताओं की प्राप्ति संभव है।

इस स्थिति में पहुचें हुए योग के साधक को संयम के द्वारा ही निर्णय लेने और अपने पथ में निरंतर लगे रहने की आवश्यकता रहती है। क्योकि ये विभूतियां साधक को उसके योग पथ से भ्रष्ट करने का भी प्रयास करती है। यदि साधक थोड़ा भी संयम से विचलित हुआ तो माया को अपने कार्य में सफलता प्राप्त हो जाती है और साधक जिस स्थिति में पहले था वही पहुंच जाता है। साथ ही साथ उसकी सारी विभूतियां एवं सिद्धियां भी समाप्त हो जाती है।

महर्षि पतंजलि ने पतंजलि योगसूत्र में कई प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया है। महर्षि ने अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम इत्यादि के साधना से भी कई प्रकार की सिद्धियों की उपलब्धि का वर्णन किया है। साधक जब अष्टांग योग की साधना करते हुये। योग के मार्ग पर बढ़ता हुआ अपने चित्त को निर्मल और निरोध की अवस्था में अग्रेसर रहता है तब उसे संयम की प्राप्ति होने लगती है और उस स्थिति में साधक को संयम जनित कई प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

संयम के अर्थ में महर्षि ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि, अष्टांग योग के अंतिम तीन अंग धारणा, ध्यान और समाधि जिन्हे हम अंतरंग साधन के नाम से जानते है। ये तीनो ही मिलकर संयम कहलाती है। इस

प्रकार जो विभूतियां हमें धारणा, ध्यान और समाधि सें प्राप्त होती है। वह सभी हमें एक साथ संयम के सध जाने पर प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार योग साधना में संयम का अपना विशेष महत्व है।

अभी तक महर्षि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि, धारणा, ध्यान और समाधि तीनो ही संयम है। उसके लिए महर्षि ने सूत्ररूप में निर्णय देते हुये कहा है–

त्रयमेकत्र संयमः।

(प.यो.सूत्र 3/4)

अर्थात्, धारणा, ध्यान और समाधि तीनों का एक ध्येय में होना संयम है।

संयम की इस स्थिति के कारण ही महर्षि ने धारणा, ध्यान और समाधि जनित जो भी विभूतियां, सिद्धियां साधक को प्राप्त होती हैं। उन्हे संयम से प्राप्त सिद्धियों का नाम दिया।

अगले सूत्र में महर्षि ने संयम से प्राप्त होने वाली विभूति को सूत्ररूप में वर्णन करते हुये सूत्र दिया है–

तज्जयात्प्रज्ञालोकः।

(प.यो.सूत्र 3/5)

अर्थात्, संयम के सधते ही प्रज्ञा अलौकिक हो जाती है।

यह संयम साधक को योगपथ पर धैर्यपूर्वक लगे रहने पर ही प्राप्त होता है। निरंतर क्रम–क्रम से चलकर ही यह संयम दृढ़ होता है। इसलिए योग पथ पर साधक को निष्ठा और धैर्य से लगे रहा चाहिए। तब जाकर वास्तविक योग के लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है और साधक परम पुरूषार्थ की प्राप्ति भी कर लेता है।

संयम से साधक को अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है। अब हम यहां कुछ महत्वपूर्ण सिद्धियों की चर्चा करेंगे–

परिणामत्रय में संयम करने से साधक को भूत और भविष्य का ज्ञान हो जाता है। महर्षि ने इसके लिए सूत्ररूप में निर्णय दिया है–

परिणाम त्रय संयमात् अतीतानागतज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/16)

इसी प्रकार शब्द, अर्थ और ज्ञान पर संयम करने से साधक को सभी प्राणियों के भाषा का ज्ञान हो जाता है।

इसके लिए महर्षि ने सूत्र दिया है–

शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरूतज्ञानम्।

(प.यो.सूत्र 3/17)

कायरूप में संयम करने से साधक को अन्तर्धान का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

जिसके लिए महर्षि ने सूत्र दिया है–

कायरूपसंयमात् तद्ग्राहयषक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाषासम्प्रयोगेअन्तर्धानम्।

(प.यो.सूत्र 3/21)

सूर्य मे संयम करने से साधक को समस्त लोको का ज्ञान हो जाता है। इसके लिए हमें सूत्र प्राप्त होता है– **भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।**

(प.यो.सूत्र 3/26)

इसी प्रकार चंद्रमा, ध्रुव तारा, नाभीचक्र, कण्ठ, कूर्मनाड़ी, मूर्ध, हृदय, स्वार्थ, प्राण, श्रोत एवं आकाश, काय और आकाश, पंचमहाभूतों इत्यादि पर संयम कर साधक अलग–अलग सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है। इन सभी सिद्धियों, विभूतियों का हमने पिछले इकाई में विस्तृत रूप से अध्ययन किया है। यहां पर मुख्य रूप से हम पतंजलि योगसूत्र में कितने प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है। उसका अध्ययन और विश्लेषण कर रहे है।

इस प्रकार हमने देखा कि, संयम– धारणा, ध्यान एवं समाधि तीनो का ही सम्मिलित रूप है। संयम से ही साधक को अनेक प्रकार की विभूतियां एवं सिद्धियां प्राप्त हो जाती है।

10.2.3 जन्मादि से प्राप्त पांच सिद्धियां–

कुछ साधक जन्म से ही ऋद्धियों, सिद्धियों से संपन्न होते है। उसके क्या कारण होत है? ऐसे साधको को जन्म से ही कौन–कौन सी विभूतियों की प्राप्ति होती है? महर्षि पतंजलि ने इन सिद्धियों को भी तृतीयपाद विभूतिपाद में वर्णित किया है। यहां हम यह समझ सकते है कि, सिद्धियां व विभूतियां सिर्फ योग साधना से ही नही प्राप्त होती है बल्कि यह जन्म से भी प्राप्त हो सकती है। महर्षि पतंजलि ने इसे सूत्ररूप में वर्णित करते हुये कहते है–

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।

(प.यो.सूत्र 4/1)

अर्थात्, सिद्धि प्राप्ति के पांच माध्यम है– जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि।

इस प्रकार महर्षि पतंजलि के अनुसार सिद्धि प्राप्ति के पांच माध्यम है। जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि। यह देखने को प्राप्त होता है कि कुछ साधक जन्म से ही सिद्धि से युक्त होता है। भगवान श्री कृष्ण, हनुमान जी, ध्रुव, प्रहलाद आदि ऐसे अनेक महापुरूष है। जो जन्म से सिद्धियों एवं विभूतियों से युक्त थे। ऐसे पथिक कई जन्मो की साधना करते–करते अपने अंतिम प्राप्ति वाले जन्म में रहते है। इस कारण इन्हे जन्मना ही सिद्धियां व विभूतियां प्राप्त रहती है।

सिद्धि का दूसरा मार्ग औषधि है। काम, क्रोध और लोभ यही तीनो वास्तविक रोग है। इनके रहने पर साधक सिद्धि से युक्त होने की बात तो दूर ठीक तरीके से विचार भी नहीं कर सकता है। इस मन में ही अनन्त रोगो का वास है। ये रोग प्रायः सभी में होते हैं। इन रोगों की औषधि है यम, नियम आदि अष्टांग साधना इनसे ही साधक इन रोगो से बच पाता है।

इसी प्रकार मंत्र से भी सिद्धि प्राप्ति होती है। महर्षि पतंजलि ने स्वयं ही ओम् को मंत्र की संज्ञा दी हैं। महर्षि कहते है– तस्य वाचकः प्रणवः। (प.यो.सूत्र 1/27) महर्षि ने उस ओम् मंत्र के जप पर स्वयं ही जोर देते है। यही नाम क्रमशः उन्नति करते–करते परावाणी में प्रवेश कर जाता है। इसके उपरान्त ही साधक को सिद्धि की प्राप्ति हो जाती हैं।

तप के द्वारा भी साधक को सिद्धि की प्राप्ति संभव है। तप के द्वारा साधक अपने शरीर, मन और इन्द्रियों को अपनी साधना के अनुकूल बना लेता है। इसी मन सहित इन्द्रियों को साधना में लगाने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है। वही तप कहलाता है। महर्षि कहते भी है– कायेन्द्रिय सिद्धिशुद्धिक्षयात्तपसः। (प.यो.सूत्र 2/43) इस प्रकार तपस्या से ही शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि और शुद्धि हो जाती है।

समाधि से भी साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है। समाधि में साधक को कई प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति स्वतः ही हो जाती है। समाधि में साधक का निज स्वरूप शून्य हो जाता हैं और साधक कैवल्यपद को प्राप्त कर लेता हैं। इस अवस्था को प्राप्त साधक की वही स्थिति रहती है। जो उस परमभाव में स्थित परम चैतन्य का हैं।

10.3 चित्त की निर्मलता–

योग का वास्तविक स्वरूप तभी पूर्ण होता है। जब साधक योग पथ पर चलते हुए अपने चित्त का निरोध कर लेता है। चित्त निरोध की अवस्था साधक को योग मार्ग पर चलकर ही प्राप्त होती है।

इस स्थिति को साधक चलकर ही प्राप्त करता है। अतः योगपथ में साधक को स्वयं ही चलना आवश्यक होता है। साधक को योग साधना का सही और वास्तविक लाभ भी तभी प्राप्त होता है जब उस मार्ग पर चलते चित्त की वृत्तियो का निरोध कर लेता है। इसी को महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ में वर्णित करते हुये सूत्र प्रदान करते है–

योगष्चित्तवृत्तिनिरोधः।

(प.यो.सूत्र 1/2)

अर्थात्, चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति ही योग का अंतिम लक्ष्य है तथा सम्प्रज्ञात समाधि योग की अंतिम लक्ष्य तक पहुचने के लिए मार्ग है। साधक को इसी सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त निर्मलता की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इस समाधि की स्थिति में साधक चित्त की विक्षेप अवस्था से मुक्त हो जाता है और साधक का चित्त पूर्णतः निर्लेप और निर्मलता को प्राप्त कर लेता है।

10.4 समाधि से प्राप्त सिद्धियों का महत्व–

जब बात सिद्धियों की जाये तब समाधि का जिक्र आवश्यक हो जाता है। समाधि से साधक को अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति साधक को स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाती है। साधक समाधि की अवस्था को प्राप्त करने के उपरान्त ही वास्तविक रूप से योग को प्राप्त करता है। अणिमादि सिद्धियों के प्राप्ति भी साधक को इन्ही समाधि की अवस्था में प्राप्त होती है। इन सिद्धियों की प्राप्ति से साधक आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग कर लोक कल्याण के कार्य करता है। इन सिद्धियों के प्रयोग से ही साधक अनेक प्रकार के कार्य करने में सहायता प्राप्त करता है।

इन समाधि जनित सिद्धियों की प्राप्ति से ही साधक साधारण से असाधारण तक की यात्रा को पूर्ण कर लेता है। इन सिद्धियों से साधक उस प्रकार के कार्य कर सकने योग्य हो जाता है। जो वर्तमान समय में चमत्कार कहे जाते है। इन्ही सिद्धियों के प्रभाव से साधक तीनों कालो का ज्ञाता हो जाता है। वह सर्वज्ञ गमन करने वाला, दूर श्रवण की क्षमता वाला, परकाया प्रवेश करने वाला, पंचमहाभूतों पर विजय प्राप्त करने वाला आदि अनेक प्रकार की विभूतियों वाला हो जाता है। इस प्रकार साधक अनेक विभूतियों से युक्त हो जाता है।

यद्यपि योग साधना में इन विभूतियों का कोई विशेष महत्त्व नही होता है। क्योकि अंततः साधक को इनसे सतर्क रहते हुए कैवल्य तक की यात्रा तय करनी होती है। साधक को इन विभूतियों को संयम एवं कुशलतापूर्वक व्यवहार में लाने की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार समाधि से अनेक प्रकार की विभूतियां एवं सिद्धियां साधक को प्राप्त होती है। साधक को इन सिद्धियों एवं विभूतियों को केवल मार्ग के साधन के रूप में उपयोग में लाने की आवश्यकता होती है। इनसे निष्काम भाव से असंयोग करते हुये साधक को व्यवहार करना चाहिए।

10.5 सारांष–

इस इकाई में हमनें सिद्धियों के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया। योग साधना के माध्यम से चित्त की शुद्धता एवं निमर्लता पर भी हमने प्रकाश प्राप्त किया। इस इकाई के माध्यम से हमने विभिन्न प्रकार के सिद्धियों का भी अध्ययन प्राप्त किया। इन सिद्धियों के प्रभाव एवं उपयोग को भी हमने इस इकाई में अध्ययन किया। साथ ही साथ हमनें इन विभूतियों एवं सिद्धियों के द्वारा साधक को योगभ्रष्ट करने की और उनसे किस प्रकार सतर्क रहना हैं। इसका भी अध्ययन किया। इसी इकाई में हमने समाधि के माध्यम से प्राप्त सिद्धियों की भी विवेचना की है।

इस प्रकार यह इकाई पूर्णतः समाधि के माध्यम से प्राप्त सिद्धियों एवं विभूतियों व उनके महत्व पर ही आधारित है। अष्टांग योग साधना की अंतिम अंग भी समाधि ही है। इसलिए योग के साधक को समाधि और उससे प्राप्त योग्यताओं और विभूतियों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

10.6 षब्दावली–

संयम – धारणा, ध्यान और समाधि का एकरूप होना

जन्मादि – जन्म आदि

ध्यान – मन की एकाग्रतावस्था

ध्येय – लक्ष्य

ध्याता – ध्यान करने वाला

ज्ञाता – ज्ञान की प्राप्ति करने वाला

विभूति – ऐश्वर्य, वैभव

स्वतः – अपने आप

10.7 संदर्भ ग्रंथ–

योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी

साधना से सिद्धि – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पातंजल योग प्रदीप – श्री स्वामी ओमानंद

योग सूत्र – वाचस्पति मिश्र

योग दर्शन – राजीव शास्त्री

10.8 अभ्यास प्रष्न–

10.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. समाधि के विभिन्न प्रकारो का वर्णन करते हुए। इसके महत्व पर प्रकाश डाले।
2. निर्मल चित्त की अवधारणा पर प्रकाश डालें एवं इस पर विस्तृत लेख लिखें ?
3. समाधि के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करे।
4. संयम पर लेख लिखे।
5. संयम से प्राप्त होने वाली विभिन्न विभूतियों का वर्णन करें।

10.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. समाधि से आपका क्या तात्पर्य है।
2. अष्टसिद्धि को परिभाषित करे।
3. निर्मल चित्त किस प्रकार प्राप्त होता है।
4. विभूति से आपका क्या तात्पर्य है।
5. सिद्धि से आपका क्या तात्पर्य है।
6. ध्याता एवं ध्यान से आपका क्या तात्पर्य है।

इकाई– 11 (धर्ममेघ समाधि)

(धर्ममेघ समाधि, विवेक ख्याति एवं कैवल्य)

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 विवेक ख्याति

11.3 धर्ममेघ समाधि

11.4 कैवल्य

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 संदर्भ ग्रंथ

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.8.1 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

11.8.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

योग एक प्राचीन भारतीय परंपरा है। जिसका अन्वेषण हमारे प्राचीन मुनियों, ऋषियों तथा महर्षियों के द्वारा किया गया। इस योगमार्ग के द्वारा वे उस परम चैत्तन्य का अन्वेषण करते हुए अन्त में स्वयं उस अवस्था में प्रविष्ट कर जाते है। जहां वें स्वयं उस परम चैत्तन्य के सदृश हो जाते है। उस परम सत्ता और उस साधक के मध्य का भेद समाप्त हो जाता है। जिस स्थिति, विभूतियों, सामर्थ्य एवं ऐश्वर्य से वह परमसत्ता युक्त है। उसी स्थिति, विभूतियों, सामर्थ्य से वह साधक भी युक्त हो जाता है। उस साधक और उस परम चैत्तन्य के मध्य का भेद समाप्त हो जाता है। विचार आता है– ऐसा होता क्यो है? तो साधक जो योगपथ पर क्रियाशील है, पूरी तत्परता के साथ लगा हुआ है। वह योग साधना के बल पर उस परमात्मा के अंश आत्मा का अन्वेषण करने में सफल हो जाता है और जैसे ही वह साधक उस आत्मतत्त्व का अन्वेषण करने में सफल होता हैं। वह आत्मबोध को प्राप्त कर लेता है।

जीव अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को क्लेशादि अविवेक के कारण भूलकर जब स्वयं को प्रकृति से अपृथक समझने लगता है। तो इसे अविवेक कहा जाता है। चित्त की वृत्तियां शांत होने पर त्रिगुणों से परे की स्थिति में जीव आत्म स्वरूप में प्रकाशित हो जाता है। इसे विवेक ज्ञान के नाम से जाना जाता

है। महर्षि पतंजलि ने साधनपाद में समाधि की उच्चतर अवस्थाओं का विवेचन किया है। धर्ममेघ समाधि, विवेक ख्याति, कैवल्य आदि इसी अवस्थाओं का नाम है।

ऐसा कहा जाता है, जिसने आत्मबोध या आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसके चित्त पर पड़ा अज्ञान का आवरण हट जाता है और वह साधक उस परम चैत्तन्य का साक्षात्कार कर लेता है। जैसे ही उस परम चैत्तन्य का साक्षात्कार होता है। वैसे ही वह साधक उसी के सदृश हो जाता है। इसी बात को बाबा तुलसी ने रामचरितमानस में व्यक्त करते हुए लिखा है– 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई' अर्थात्, जैसे ही साधक का उस परम तत्व से साक्षात्कार होता है। वह उसी के सदृश अवस्था वाला हो जाता है।

इस इकाई मे ंहम योग के महत्वपूर्ण अंग विवेक ख्याति, धर्ममेघ समाधि तथा कैवल्य का अध्ययन करेंगे। योग मार्ग पर लगे साधक को योग की अंतिम स्थिति तक पहुचनें से पहले इन अवस्थाओं की प्राप्ति होती है। साधक को यम से लेकर समाधि तक की यात्रा कें पड़ाव में विवेक ख्याति, धर्ममेघ समाधि और अंत में कैवल्य की प्राप्ति होती है।

11.1 उद्देष्य–

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों को योग के विभिन्न आयामों से परिचित कराना है।
- इस इकाई में आप योग की उन आयामों का भी अध्ययन कर सकेंगे, जिसमें लगा हुआ साधक उस स्थिति को प्राप्त हो जाता है। जहां से वह साधक योग की पराकाष्ठा में पहुंच जाता है।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विवेक ख्याति और उसके गुण और महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई के द्वारा आप पतंजलि योगसूत्र में वर्णित ंधर्ममेघ समाधि से भी भली–भांति परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई के द्वारा आप एक योग साधक की साधना के अंतिम लक्ष्य कैवल्य की अवस्था से परिचित हो सकेंगे। कैवल्य को किन–किन नामों से जाना जाता है। इस ही परमपुरूषार्थ क्यों कहा जाता है।
- महर्षि पतंजलि के द्वारा वर्णित योग की विषेश आयामों जिससे साधक चित्त की निर्मलता को प्राप्त कर ऋतंभरा प्रज्ञा और उसके उपरांत विवेक ख्याति और अंत मे धर्ममेघ समाधि से भी परिचित हो सकेंगे।

11.2 विवेक ख्याति–

महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय साधनपाद में पहली बार विवेक ख्याति का नाम लिया है। ख्याति का तात्पर्य ज्ञान से लिया जाता है। इस प्रकार विवेक ख्याति से तात्पर्य विवेक से युक्त ज्ञान है। जो ज्ञान यथार्थ का प्रकाशक है वही विवेक ख्याति है। विवेक युक्त ज्ञान प्राप्त हो जाने पर साधक की वृत्ति निश्चल और निर्दोष अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जिससे साधक दुखों के अनुभव से मुक्त हो जाता है। अर्थात्, वह दुखों को पार कर जाता है। विवेकख्याति में साधक का विवेक उस अवस्था में पहुंच जाता है। जब विवेक अपना परिणाम देने के अवस्था में पहुंच जाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार विवेकख्याति हान से मुक्त कराने का साधन है। इसी विषय का समर्थन करते हुए महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में सूत्र प्रदान करते है–

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।

(प.यो.सूत्र 2/26)

अर्थात्, विवेकज्ञान से युक्त हान हो जाने पर दुःखों का अन्त हो जाता है।

इस विवेकख्याति की प्राप्ति हमें ऋतंभरा प्रज्ञा से प्राप्त होता है। ऋतंभरा प्रज्ञा से हम तात्पर्य है, जब हमारी बुद्धि राग और द्वेष से मुक्त हो जाती है। उसी स्थिति में पहुंची हुई साधक की बुद्धि निर्मल और शुद्धि को प्राप्त कर लेता है। साधक की बुद्धि संशय और क्लेशों आदि विकारों को से भी मुक्त हो जाती है और विवेकयुक्तज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इसी विवेकयुक्तज्ञान को महर्षि ने विवेकख्याति के नाम से संबोधित किया है।

विवेकख्याति के इसी मुक्ति और चित्त शुद्धि के कारण योग साधना में लगा हुआ साधक साधना के पराकाष्ठा में पहुंच जाता है। जिससे साधक मन के तरंगो, उद्वेग, उथल–पुथल आदि अनेक मन के विकारों से निवृत्त हो जाता है।

इस प्रकार जब साधक का मन ही उसके स्वयं के विकारों से मुक्त हो जाता है। तो इस निर्मलता को प्राप्त मन ही दुःखो के अनुभव से मुक्त हो जाता है। इसी अवस्था में पहुचने पर साधक को सभी आत्मिक विभूतियों का प्रसाद प्राप्त होने लगता है। साधक को सभी प्रकार की विभूति प्राप्त हो जाती है। इस स्थिति में स्थित होने पर साधक की बुद्धि ऋतंभरा कहलाती है।

इसी को महर्षि सूत्ररूप में कहते है–

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।

(प.यो.सूत्र 1/48)

अर्थात्, उस समय योगी की बुद्धि ऋतंभरा (सत्य) से संयुक्त हो जाती है।

ऋतंभरा अर्थात् सत्य, अब हम स्पष्टता से कह सकते कि, साधक की बुद्धि सत्य से संयुक्त हाने की स्थिति में आ गई है। योग मार्ग में हम सत्य से तात्पर्य उस चैतन्य, शुद्ध स्वरूप से लगाते है। इस प्रकार जब साधक की बुद्धि उस सत्य से संयुक्त होने और उसे धारण करने की क्षमता से युक्त हो जाती है। तब उस स्थिति में साधक को अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति हो जाती है। अब उस साधक को केवल उस परम चैतन्य, शुद्ध स्वरूप से एकाकार होना शेष है। इस ऋतंभरा प्रज्ञा की प्राप्ति के उपरांत ही उस विवेकख्याति की प्राप्ति होती है। जिससे साधक उस सत्य को धारण कर लेता है। उसे प्राप्त कर लेता है। उस सत्य से संयुक्त हो जाता है। उस सत्य से संयुक्त होते ही साधक उसी की स्थिति वाला हो जाता है और साधक के संपूर्ण दुःखो का अंत हो जाता है।

इस प्रकार सर्वप्रथम साधक को साधना से निर्विचार की स्थिति प्राप्त हो जाती है। निर्विचार से अध्यात्म प्रसाद, आध्यात्म प्रसाद से ऋतंभरा प्रज्ञा, ऋतंभरा प्रज्ञा की प्राप्ति के पश्चात साधक को विवेक ख्याति की प्राप्ति हो जाती है। आप यहां देखेंगे कि, यह संपूर्ण योग साधना एक प्रक्रिया विशेष से होकर गुजरती है और योग साधना में लगा हुआ साधक अंत में उस योग के परम लक्ष्य चैतन्य से संयुक्त होकर उसी शुद्ध चैतन्य की ही अवस्था वाला उन्ही की विभूतियों वाला होकर उन्ही से समान हो जाता है। इसी को योग की शब्दावली में हम और आप कैवल्य कहते है।

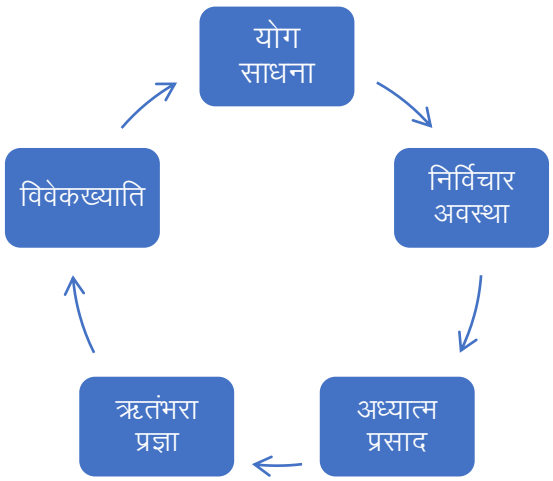

11.3 धर्ममेघ समाधि–

जब साधक विवेकख्याति को प्राप्त हो जाता है। उस स्थिति में साधक के चित्त में समाधिस्थ अवस्था में समाहित होन वाले गुणों का विकास हो जाता है। किन्तु साधक के चित्त में अभी भी उद्वेग उत्पन्न होते रहते है। यह उद्वेग साधक को उसके पूर्व जन्म के संस्कारों से प्राप्त होता है। विवेकख्याति की अवस्था को प्राप्त साधक नये कर्मों का संग्रह नहीं करता है। फिर भी उसके पुराने कर्मों के संस्कार अभी शेष है। जिसके कारण साधक को अभी इन संस्कारों का उच्छेदन करना शेष हैं। महर्षि पतंजलि ने इसके लिए सूत्ररूप में वर्णन किया है–

हानमेषां क्लेषवदुक्तम्।

(प.यो.सू 4/28)

अर्थात्, पूर्व जन्म के बचे संस्कारों को पंचक्लेशों के समान समझना चाहिए।

जिस प्रकार क्लेशों के समन होने पर विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार इन पूर्व जन्म के संस्कारों के समन होने के उपरांत ही धममेघ समाधि की प्राप्ति होती है। बिना इन संस्कारों के उन्मूलन किये धर्ममेघ समाधि की अवस्था नहीं प्राप्त होती है। साधना में जितने हानिकारक क्लेश होते है। उतने ही ये पूर्व जन्म के संस्कार भी हानिकारक होते है। इनका भी समन क्लेंशो की भांति करना अति आवश्यक होता है।

महर्षि पतंजलि ने धर्ममेघ समाधि का वर्णन करते हुए सूत्र प्रदान किया है–

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः।

(प.यो.सूत्र 4/29)

अर्थात, जिस साधक को विवेक ज्ञान की महिमा से भी वैराग्य हो जाता है। उसका विवेक ज्ञान सर्वथा के लिए प्रकातिशत हो जाता है, जिस कारण उसे धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

जब साधक को आत्मा एवं बुद्धि (प्रकृति) के भिन्नता का ज्ञान होता है तो साधक को पूरी से सिद्धियों एवं विभूतियों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। इसे ही साधक के विवेक ज्ञान का प्रकाशित होना कहा जाता है और यही धर्ममेघ समाधि कहलाता है।

स्पष्ट है कि, साधक इस अवस्था में कई प्रकार की सिद्धियों का स्वामी होते हुए भी इन सिद्धियों से विरक्त रहता है। इस अवस्था में साधक के तमों गुण एवं रजों गुण का सर्वथा उन्मूलन हो जाता है। लेकिन सात्विक गुण अभी शेष रहते है। अर्थात्, साधक में सतोगुण की प्रधानता रहती है।

इस अवस्था में पहुचनें पर साधक के मन में सांसारिक भोगों की इच्छा समाप्त हो जाती है। क्लेश, कर्म आदि विकारों से अतीत होता है। उसे महर्षि पतंजलि ने ईश्वर कहकर संबोधित किया है और धर्ममेघ समाधि को प्राप्त साधक भी क्लेश आदि विकारों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उस ईश्वर और उसी अवस्था को पहुंचा हुआ जो साधक है उसमें कोई भेद नहीं रह जाता है।

इसके उपरांत महर्षि ने धर्ममेघ समाधि के प्रभाव का वर्णन करते हुआ सूत्र दिया है–

ततः क्लेषकर्मनिवृत्तिः।

(प.यो.सूत्र 4/30)

अर्थात्, इस धर्ममेघ समाधि के प्राप्त होने पर साधक सभी क्लेशों और इनसे उत्पन्न कर्म के संस्कारों का समन कर जाता है।

इस धर्ममेघ समाधि की अवस्था प्राप्त होने के पश्चात जब साधक अपने सभी क्लेशों एवं उनके द्वारा उत्पन्न कर्म के संस्कारो के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। तब साधक अनंत ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है। साथ ही साथ वह परमात्मा के अत्यंत निकट पहुंच जाता है। इसी को महर्षि ने सूत्ररूप में वर्णन करते हुए निर्णय देते है–

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्।

(प.यो.सूत्र 4/31)

अर्थात्, जिस समय साधक के सभी आवरण और मल का समन हो जाता है। उस समय वह अनन्त ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जिससे ज्ञेय वस्तु परमात्मा और साधक के मध्य की दूरी अत्यन्त अल्प हो जाती है।

11.4 कैवल्य–

योग दर्शन के अन्तर्गत कैवल्य बहुत ही महत्वपूर्ण अंग के रूप में जाना जाता है। कैवल्य के महत्व को ऐसे भी समझ सकते है न सिर्फ योगदर्शन बल्कि संपूर्ण भारतीय दर्शन इस कैवल्य की अवस्था को प्राप्त करने पर बल प्रदान करता है। हमारे भारतीय दर्शन में कैवल्य को अनेक नामों से जाना जाता है। जैसे– निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग, परमपुरूषार्थ आदि। इसे हमारे ग्रंथो ने मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य के रूप में परिभाषित किया है। हमारे ग्रंथो में चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चर्चा पाई जाती है। इन चारों में मोक्ष को ही परमपुरूषार्थ के रूप में माना जाता है। कैवल्य से तात्पर्य आत्मदर्शन के रूप में लिया जाता है। हमारे भारतीय दर्शन में विशेषकर योग दर्शन में इस

आत्मदर्शन को तब पूर्ण माना जाता है, जब योग साधना में लगा हुआ साधक पुरूष को विदित कर लेता है। भारतीय दर्शन में पुरूष से तात्पर्य आत्मा से लगाया जाता है।

इस प्रकार जो भी दर्शन आत्मा को स्वीकार करते है। वे सभी कैवल्य को भी मान्यता प्रदान करते है। या फिर हम कह सकते है कि, वे सभी कैवल्य को ही जीवन के अंतिम लक्ष्य को मान्यता प्रदान करतें है और इसे ही परमप्राप्ति के रूप में तथा परमपुरूषार्थ के रूप में स्वीकार करते है। इस प्रकार जो भी दर्शन इस कैवल्य की अवस्था को स्वीकार करते है। वे इस बात पर एकमत है कि, कैवल्य ही जीवन के संपूर्ण दुःखो के अंत का साधन है। इस स्थिति को प्राप्त करने वाले साधक को फिर कोई दुःख शेष नहीं रह जाता है। संपूर्ण भारतीय दर्शन में इस मोक्ष या कैवल्य पर दिये गये प्रबल तर्कों के कारण ही भारतीय दर्शन को मोक्ष दर्शन, कैवल्य दर्शन या मोक्ष शास्त्र के रूप में भी जाना जाता है।

योग का अंतिम लक्ष्य जीवन को मुक्त बनाना है। जिसके लिए योग दर्शन ने कैवल्य की प्राप्ति पर बल दिया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योग में साधनों का भी वर्णन प्राप्त होता है। इन साधनों का तरीका अलग–अलग हो सकता है। लेकिन सभी उसी अंतिम लक्ष्य मोक्ष तक ले जाने के माध्यम के रूप में कार्य करते है। इस तरह हम देख सकते है कि, योग का जीवन से सीधा संबंध है और इस योग का स्वयं के जीवन पर ही सीधा प्रभाव पड़ता है। स्वयं के दुःखो को मुक्त करना है और उसके लिए जो प्रयास किया जाता है, वही योग साधना है।

इस योग साधना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने पर पुरूष दुःखो से मुक्त हुआ परम चेतना में स्थित हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त हुआ योग साधक ही वास्तविक रूप से निर्वाण को प्राप्त होता है। वही दुसरों को उस योग के वास्तविक मार्ग पर ले जा सकता है और उन्हे दुःखों से मुक्त कर सकता है। आवश्यकता है, योग साधना के मार्ग में दृढता से लगने का और योग साधना के बल पर आत्मनिरीक्षण करते हुए क्रमशः उस मार्ग पर चलना।

वास्तव में कैवल्य बुद्धि या तर्क का विषय नहीं है। यह स्वयं के अनुभव का विषय है। जिस पर साधक को स्वयं ही चलना पड़ता है और इसे उस योग मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वयं चलकर देखना, हमारे बुद्धि में तर्क उत्पन्न कर सकता है कि, योग को स्वयं चलकर कैसे प्राप्त कर सकते है? हम इस विषय में गहनता से अध्ययन करें तो हम पाते है कि, जिसने भी कैवल्य की अवस्था को प्राप्त किया है। उन्होने स्वयं ही चलकर उस कैवल्य को प्राप्त किया है। इस संबंध में हमे अनेक योगियों के नाम प्राप्त होत है। जिन्होने भी प्राप्त किया उन्होने स्वयं ही चलकर उस योग को प्राप्त किया है।

इसमें हम सबसे प्रचलित नाम महात्मा बुद्ध का पाते है। जिन्होने अकेले स्वयं में चलकर साधना के बल उस बोध को प्राप्त किया। जिसके बाद उन्होने बुद्धत्व को प्राप्त किया साथ ही उन्होने निर्वाण

को भी प्राप्त किया। इस प्रकार यह बिल्कुल प्रमाणित है कि, योग की साधना में साधक को स्वयं ही चलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त लाहड़ी महाशय, परमहंस परमानंद जी, युक्तेश्वर जी, परमहंस योगानंद जी आदि ऐसे अनेक नाम है। जिन्होने स्वयं ही चलकर उस योग के अंतिम लक्ष्य कैवल्य की अवस्था को प्राप्त किया। कैवल्य का अर्थ सिर्फ दुःखों से निवृत्ति नहीं है बल्कि जन्म–मरण के बंधन से मुक्त होना भी है। अर्थात्, कैवल्य को प्राप्त करने वाले साधक इस संसार के जीवन–मरण के चक्र से को पार कर जाते है और उन्हे पुनः जन्म नहीं लेना है।

जब हम महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित पतंजलि योगसूत्र का अध्ययन करते है। तब हम पाते है कि, पतंजलि योगसूत्र का अंतिमपाद को कैवल्यपाद के ही नाम से जाना जाता है। जिससे यह स्पष्ट हो जात है कि, महर्षि ने भी कैवल्य को मान्यता दी है। योगदर्शन में स्थान–स्थान पर कैवल्य के विषय में देखने को प्राप्त होता है।

महर्षि ने प्रथमपाद समाधिपाद के तीसरे सूत्र में कहा है–

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

(प.यो.सूत्र 3/1)

अर्थात्, उस समय द्रष्टा अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेती हैं।

अब मन में विचार आता है कि, द्रष्टा क्या है और ये स्वरूप क्या है? तो यहां द्रष्टा से तात्पर्य आत्मा से है। जो हम सब के अंदर सुक्ष्मतत्व के रूप में परमात्मा के अंश के रूप में रहती है तथा स्वरूप वह स्थिति है जिससे आत्मा का योग हो जाता है। यही है, द्रष्टा का अपने स्वरूप से मिल जाना।

पतंजलि योगसूत्र के दूसरेपाद समाधिपाद में महर्षि कहते है–

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृषेः कैवल्यम्।

(प.यो.सूत्र 2/25)

अर्थात्, उसके (अविधा) आभाव में संयोग का अभाव हो जाता है। उससे 'हान' का भी अत्यंत अभाव हो जाता है। यही (आत्मा) कैवल्य पद है।

इस सूत्र के अनुसार, अविधा ही संयोग का कारण है और जब अविधा का नाश हो जाता है। तब संयोग का अभाव हो जाता है। संयोग का अभाव होते ही 'हान' अर्थात्, दुःखों का अत्यंत अभाव हो जाता है। यहां दुःखों का संपूर्ण अंत नहीं होता है। दुःख अभी है लेकिन अल्प मात्रा में है। यही स्थिति कैवल्य पद है। अर्थात्, कैवल्य पद प्राप्ति के मार्ग में सर्वप्रथम दुःखो का अभाव हो जाता है।

पतंजलि योगसूत्र के तृतीयपाद विभूतिपाद में हमे प्राप्त होता है–

सत्त्व पुरूषयोः षुद्धिसाम्ये कैवल्यम्।

(प.यो.सूत्र 3/55)

अर्थात्, जब चित्त और पुरूष की शुद्धि हो जाती है। तब चित्त और पुरूष समत्व में स्थित हो जाते है और इससे कैवल्य की अवस्था आ जाती हैं।

इस सूत्र के माध्यम से महर्षि ने कैवल्य की पूर्ण अवस्था का वर्णन किया है। इससे पूर्व की अवस्था में साधक के चित्त और पुरूष में अंतर था। लेकिन जब साधक योग साधना में निरंतर दृढ़तापूर्वक लगा रहता है। तब उसके चित्त और पुरूष में शुद्धि और समत्व की स्थिति आ जाती है। दोनो एक समान स्थिति और अवस्था को प्राप्त हो जाते है। इससे उस साधक को कैवल्य की अवस्था प्राप्त हो जाती हैं।

इसी प्रकार महर्षि पतंजलि योगसूत्र के चतुर्थपाद में महर्षि सूत्र प्रदान करते है–

पुरूषार्थषून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिषक्तेरिति।

(प.यो.सूत्र 4/34)

जब (साधक) की पुरूषार्थशून्यता की अवस्था आ जाती है और साधक का उस पुरूष के लिए कोई कत्तर्व्य नहीं रह जाता है। गुण अपने उद्भव में ही विलीन हो जाते है। इससे द्रष्टा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही कैवल्य है।

इस प्रकार इस सूत्र के अनुसार, साधक साधना के उस चरण मे पहुंच जाता है। जब साधक अपने आप में पूर्णता को प्राप्त कर लेता हैं। साधक के गुणों का अंत हो जाता है। साधक स्वयं में गुणातीत की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। पुरूष से संयोग करने का कोई कर्त्तव्य उसे शेष नहीं रह जाता है। इस अवस्था में द्रष्टा अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यही कैवल्य की अवस्था है।

11.5 सारांष–

भारतीय दर्शन में योग का विशेष महत्व है। सभी भारतीय दर्शन हमें योग के द्वारा कैवल्य तक की यात्रा तय करने और उसे प्राप्त करने पर बल देता है। भारतीय दर्शन में योग का अंतिम लक्ष्य ही कैवल्य प्राप्ति को बताया गया है। इस सारांश के द्वारा हमने विवेकख्याति का अध्ययन किया। जिसमें हमने पढ़ा कि, विवेकख्याति की प्राप्ति हमें तब प्राप्त होती है। जब हमारे क्लेश मिट जाते है। क्लेशों के शांत अवस्था में पहुचने पर ही विवेकख्याति की प्राप्ति होती है। यह कैवल्य तक यात्रा में एक माध्यम की तरह कार्य करता है। इसके उपरांत हमने धर्ममेघ समाधि का अध्ययन किया। जिसके अनुसार

धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति तब होती है। जब विवेकख्याति की प्राप्ति पूर्ण हो जाती है। अर्थात्, धर्ममेघ समाधि की अवस्था विवेकख्याति से उच्च होती है।

धर्ममेघ समाधि में साधक के पूर्व जन्म के संस्कारों का अंत हो जाता है और चित्त की स्थिति निर्मलता को प्राप्त कर लेती है। धर्ममेघ समाधि के आने पर साधक समाधिस्थ अवस्था में जाने की स्थिति में आ जाता है। अर्थात्, उसका मन पूर्ण नियंत्रण की स्थिति में आ जाता है। इसके साथ–साथ साधक को अनेक विभूतियां और ऐश्वर्य की भी प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार हमनें कैवल्य की अवस्था का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। कैवल्य वह अवस्था हैं। जहां पर साधक को साधना का परिणाम प्राप्त हो जाता है। इसी अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद साधक दुःखो से मुक्त हो परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। इसी को हम आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, निरंजन पद, कैवल्य पद, निर्वाण पद, मोक्ष पद आदि अनेक नामों से पुकारते है।

यह कैवल्य पद पूर्णतः चलकर प्राप्त होता है। साधक जो साधना पथ में निरंतर लगा हुआ है। उसे अंत में इसी पद की प्राप्ति होती है। इसी पद को प्राप्त करने के पश्चात कहा जाता है। साधक को मुक्ति प्राप्त हो गई। साधना के पूर्तिकाल में कैवल्य पद की प्राप्ति हो जाती है। अब साधक को और साधना करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जिसे प्राप्त करना था उसकी प्राप्ति हो गई। अब साधक को कोई कार्य शेष नहीं रह जाता है। उसने अपने सभी बंधनो को काट दिया है। अब साधक को कोई बंधन शेष नहीं रह गया है। वह मुक्त होकर परमआनंद मे विचरण करते हुए अपने आप में ही स्थित हुआ। अपने आप में ही मग्न रहता है।

11.6 षब्दावली–

निवृत्त	–	छुटकारा
युक्त	–	सहित
सम्यक्	–	सही–सही
बोध	–	ज्ञान
सर्वथा	–	पुरी तरह से
नित्य	–	हमेशा
पराकाष्ठा	–	उच्चतम

अवस्था	–	दशा
कैवल्य	–	मुक्ति
प्रवृत्ति	–	स्वभाव
शाश्वत	–	हमेशा रहने वाला
अपूर्व	–	जो पहले ना रहा हो
संचित	–	इकट्ठा

11.7 संदर्भ ग्रंथ–

1. योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या	–	स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज
2. शंका – समाधान	–	स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज
3. यर्थाथ गीता	–	स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज
4. योग सूत्र	–	वाचस्पति मिश्र
5. पतंजलि योग प्रदीप	–	ओमानंद तीर्थ

11.7 अभ्यास प्रष्न–

11.7.1 दीर्घउत्तरीय प्रश्न–

1. योग में कैवल्य की स्थिति को स्पष्ट करे।
2. विवेकख्याति से आप क्या समझते है।
3. धर्ममेघ समाधि से आपका क्या तात्पर्य है।
4. कैवल्य से आप क्या समझते है।
5. विवेकख्याति और कैवल्य में क्या संबंध हैं।

11.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. विवेकख्याति के लाभ बताये।
2. पूर्व जन्म के संस्कारो का नाश कैसे हो जाता है।
3. धर्ममघ समाधि के प्राप्त होने पर साधक को क्या स्थिति प्राप्त होती है।
4. कैवल्य के विषय में महर्षि पतंजलि के वर्णन बताये।
5. कैवल्य की अवस्था में साधक को क्या–क्या लाभ प्राप्त होते है।

इकाई–12 कर्म

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 कर्म

12.3 कर्म के प्रकार

12.4 कर्मफल सिद्धान्त

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 संदर्भ ग्रंथ

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.8.1 निबंधात्मक प्रश्न

12.8.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम कर्म से सही स्वरूप को समझने और उसका विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे। महर्षि पतंजलि ने भी अपने ग्रंथ योगदर्शन में कर्म पर प्रकाश डाला है। हम महर्षि द्वारा वर्णित उस कर्म को भी समझने का प्रयत्न करेंगे। कर्म एक ऐसा विषय है जो साधारणतः समझ में नहीं आता है। हम सभी ने श्रीमद्भगवद् गीता और अन्य कई प्राचीन ग्रंथो के अनुसार कर्म के विषय में अवश्य सुना होगा। यहां पर हम श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार भी कर्म के वास्तविक रूप को समझने का प्रयास करेंगे। कर्म के प्रकारों का भी अध्ययन व विश्लेषण कर कर्म के सही स्वरूप को सामने लाने का प्रयास हम करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से कर्म के वास्तविक स्वरूप को हम जानने का प्रयास करेंगे। कर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने की वर्तमान समय में अत्यंत आवश्यक हो जाता है। क्योकि आज

संसार में सभी प्राणी कही न कही इस कर्म के सही स्वरूप को न जान पाने के कारण दुखमय जीवन जी रहे है। वे दिन–रात भौतिक चका–चौंध को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे है।

वास्तव में मनुष्य जैसे विचारशील प्राणी के रूप में हमे किस प्रकार से अपने कर्मो को करना चाहिए। किस प्रकार से अपने जीवनशैली को जीना चाहिए। किस प्रकार से अपने पारीवारिक, सामाजिक और अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को निभाना चाहिए। मनुष्य होने के कारण हमें इसका ज्ञान अवश्य होना चाहिए। कर्म के सही स्वरूप को समझने के बाद भी उस पर चलना शेष रह जाता है।

योगपथ में चलने वाले ही इसके लाभ को प्राप्त करते है। उसी प्रकार सबकुछ जानने–सुनने के बाद भी चलकर देखना शेष रह जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म के विषय में बतलाते हुए कहते है कि, अर्जुन बहुत कुछ जान लेने और देख लेने के बाद भी उस (योगपथ) पर चलना शेष रह जाता है। क्योकि बिना चले वह कर्म पूरा ही नहीं हो सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि, महर्षि पतंजलि के समय के में भी योगपथ के योगियों में कर्म को लेकर भ्रम थे। जिसको दूर करने के लिए ही महर्षि ने कर्म को अपने ग्रंथ में स्थान दिया। ताकि जो वास्तविक साधक है। वे कर्म को लेकर भ्रम में ना रहे और योग पथ की साधना में निरंतर आगे बढते हुये। योग के वास्तविक लक्ष्य कैवल्य तक की यात्रा को पूर्ण कर सके। हम कह सकते है कि, योगपथ में लगे हुए साधको को योग में ही पूर्णरूपेण लगे रहने और उन्हे योगमार्ग से विचलित ना होने के लिए ही महर्षि ने कर्म को को योगदर्शन में परिभाषित किया है।

12.1 उद्देष्य–

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों को कर्म से परिचित कराना है।

- योग के शिक्षार्थी होने के कारण योगपथ में चलने की प्रेरणा प्रदान करने और महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में किस प्रकार के कर्म को बतलाया है। शिक्षार्थियों के इससे अवगत होना चाहिए।
- योगपथ में चलने के लिए कर्म के सही स्वरूप को जानने व समझने की आवश्यता होती है।
- महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित कर्म क्या है। उन्होने कर्म किसे कहा है।
- कर्म को कितने प्रकारों में विभाजित किया है। इसको भी जानना योग के शिक्षार्थियों के लिए आवश्यक है।
- श्रीमद्भगवद्गीता मे वर्णित कर्म से हम सभी परिचित हो सकेंगे।
- योगेश्वर श्री कृष्ण ने किस कर्म कहा है उससे भी हमारा परिचय होना आवश्यक हो जाता है।
- योग के पथिकों को योगपथ पर चलते हुए कर्म के विषय में किसी प्रकार का भ्रम ना रहे।
- शिक्षार्थियों को हमारे प्राचीन योग ग्रंथो मे वर्णित कर्म से परिचित करना भी इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

12.2 कर्म–

कर्म 'कृ' धातु से निर्मित शब्द है जिसका अर्थ होता है– करना। समान्यतः कर्म का अर्थ क्रिया से लगाया जाता है। अर्थात् जब क्रिया होती है तभी कर्म भी होता है। इस प्रकार क्रिया करने पर ही कर्म होता है। क्रिया करने पर कर्म होता है। परंतु यह क्रिया कर्म तभी होता है जब क्रिया के पीछे कोई भाव हो, विचार हो, लक्ष्य हो। इन्ही कर्म से ही कर्म का फल भी संग्रह होता है। कोई कार्य जब किया जाता है तो क्रिया का आश्रय और उस क्रिया का फल दोनों ही प्राप्त होते है। इसलिए सामान्य रूप से हम जो भी कार्य को करते है। उसे हम कर्म की संज्ञा देते हुए करते जाते है। कई बार हम अपने किये गये कार्यो को अपना कर्त्तव्य कर्म भी कहकर संबोधित करते है।

सामान्यतः कर्म के कई अर्थ निकाले जाते है। जैसे– कार्य, क्रिया, करना आदि। योगमार्ग में जब क्रिया की जाती है तो उसके पीछे एक लक्ष्य होता है, उसके पीछे एक भाव होता है। एक विचार होता है। योगमार्ग का लक्ष्य अपने आप में ही परमपुरूषार्थ कहलाता है।

हम जब महर्षि पतंजलि कृत पतंजलि योगदर्शन के अनुसार कर्म का अवलोकन करते है। तो हम देखते है कि, महर्षि ने योगी के कर्म को परिभाषित करते हुए कहते है, योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण होते है। हमे यह समझने की आवश्यकता है कि, वास्तव में वह कौन सा कर्म है जिसे हमें करना है। इसका उत्तर भी हमे योगदर्शन से ही प्राप्त हो जाता है।

महर्षि ने प्रथमपाद के दूसरे ही सूत्र में योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि, योग की प्राप्ति के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध करें। हमे योगपथ पर चलने के लिए तथा योग की वास्तविक प्राप्ति के लिए जो कर्म को कार्यरूप देना है वह क्या है? वह है चित्त वृत्तियों का निरोध। महर्षि ने इसे सूत्ररूप में भी निरूपित करते हुये कहा है–

योगष्चित्तवृत्तिनिरोधः।

(प.यो.सूत्र 1/2)

इस प्रकार हम देख सकते है कि, महर्षि ने स्पष्टता से किस कार्य को करने पर बल दिया है जिससे हमें योग की प्राप्ति हो जायेगी। वह चित्त की वृत्तियों का निरोध जिसको कार्य रूप देने के लिए किया गया कार्य ही वास्तविक कर्म है। विचार उठना स्वाभाविक है किस प्रकार चित्त की वृत्तियों का निरोध संभव है तो महर्षि कहते है अभ्यास और वैराम्य के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध संभव है। इसके संबंध में महर्षि ने प्रथमपाद में ही उसका उत्तर प्रदान करते हुए कहते है–

अभ्यास वैराग्याभ्याम तन्निरोधः।

(प.यो.सूत्र 1.12)

पुनः जब हम श्रीमद्भगवद्गीता पर दृष्टिपात करते है तो हमे पुनः वहां देखने को प्राप्त होता है कि, भगवान श्री कृष्ण ने भी अर्जुन को इसी मन को नियंत्रित करने के लिए कहते है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने मन के विषय मे श्लोक के माध्यम से बताया है–

असंषयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यतें।।

(श्रीमद् भगवद्गीता 6/35)

श्री भगवान कहते है, हे महाबाहों ! यह मन बहुत ही चंचल है और इसको वश में करना भी बहुत ही कठिन है। परन्तु हे कुन्तीपुत्र ! अभ्यास और वैराग्य से इसे वश में किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि, श्रीमद् भगवद्गीता में भी हमें इसी मन के निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य का पालन करने का निर्देश प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, योग की प्राप्ति के लिए मन को नियंत्रित करना आवश्यक है और उसके लिए साधक को अभ्यास और वैराग्य का माध्यम अपनाने पर गीता में बल दिया गया है। ठीक इसी प्रकार, हमे पतंजलि योगसूत्र भी योग की प्राप्ति के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध करने का निर्देशन प्राप्त होता है और उसके लिए भी महर्षि ने अभ्यास और वैराग्य का माध्यम अपनाने पर बल दिया है।

इसी कर्म को साधक पूर्ण मनोयोग से कुशलतापूर्वक करता हुआ जब योग के अंतिम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। तब यहीं स्थिति साधक के लिए कर्मयोग कहलाता है। इस प्रकार कर्म करते हुए जब चित्त का पूर्ण निरोध की प्राप्ति हो जाती है और साधक उस परमसत्ता से एकाकार हो जाता है। तब उस साधक को कर्म करने की आवश्यकता नही रह जाती है। उसे जिस अवस्था को प्राप्त करना था। साधक ने पूर्ण मनोयोग से पूर्ण निष्ठा से तथा पूर्ण पुरूषार्थ से उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है। उसे जिस अवस्था को प्राप्त करना था।

साधक ने उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है। अब उसे और कार्यम् कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह गई है। क्योकि उसे इस कर्म को करने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। वह स्वयं में पूर्णत्व को प्राप्त कर स्वयं में ही रमण करने वाला स्वयं में ही परमसत्ता हो गया है। उसे अब किसी भी प्रकार का कोई प्रयोजन नहीं करना है।

लेकिन उस अवस्था को प्राप्त किया हुआ वह महापुरूष दूसरों के मार्गदर्शन के लिए तथा समाज को सही मार्ग दिखलाने के लिए उस कार्यम् कर्म को कार्यरूप देता है। जिससे समाज कर्म का अनुसरण कर सकें तथा सत्य के मार्ग का अनुसरण कर सकें।

हम सभी हर समय कोई न कोई कर्म को अवश्य ही करते रहते है। हम क्षणमात्र भी कर्म किये बगैर नहीं रह सकते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि, जब तक प्राण है, जब तक जीवन है कर्म तो करना ही पड़ेगा। इसी बात को श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण नें श्लोक के रूप में वर्णन करते हुए कहा है–

न हि कष्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवषः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 3/5)

अर्थात्, कोई भी मनुष्य किसी भी क्षण किसी भी अवस्था में बिना कर्म को किये नहीं रह सकता है। क्योकि सभी प्राणि परवश हुये प्रकृति जनित गुणों को करता ही रहता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, कोई भी मनुष्य बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रह सकता है। प्रकृति के परवश हुये सभी मनुष्यों को कर्म करना ही पड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीन प्रकार के योग का विवरण प्राप्त होता है। सभी का लक्ष्य एक ही है। उस परमसत्ता के साथ एकीकार होना। लेकिन तीनो में से किसी योग की प्राप्ति के लिए साधक को कर्म का सहारा लेना ही पड़ेगा। कर्म किये बगैर किसी भी प्रकार से उस सर्वसमर्थसत्ता की प्राप्ति साधक को नहीं हो सकती। साधक को इसके लिए कर्म करना अनिवार्य है।

मनुष्य प्रकृति के परवश हुआ एक क्षण भी कर्म के बगैर नही रह सकता है। यह प्रकृति तीन गुणो से युक्त है। जिन्हे हम सत्, रज् और तम् के नाम से जानते है। इन्ही गुणों के अधीन हुआ मनुष्य कर्म किये बगैर नहीं रह सकता है। जब सत् गुण उच्च अवस्था में रहते है तब मनुष्य अच्छे कार्यो में प्रवीण रहता है तथा उसके रज् और तम् गुण गौण रहता है। जब रज् गुण उच्च होते है तब सत् और तम् गुण गौण हो जाते है।

इस स्थिति में मनुष्य भौतिक कार्यो को करने और उपलब्धि प्राप्त करने में लगा रहता है। इसके उपरांत जब तमों गुण प्रधान हो जाता है तब मनुष्य के सत् और रज् गुण गौण हो जाते है। इस अवस्था को प्राप्त मनुष्य आलसी, अकर्मण्य की अवस्था वाला हो जाता है। इसमें मनुष्य किसी कार्य को करने से परहेज करता है। उसे किसी भी कार्य को करने में मन नहीं लगता है।

प्रकृति की दो अवस्थाओं हमें प्राप्त होती है। एक अवस्था को सक्रिय तथा दूसरे को असक्रिय कहते है। जब मनुष्य कार्य करता है तो इस स्थिति को सक्रिय अवस्था कहते है। जैसे– ध्यान की अवस्था में साधक का होना तथा जब मनुष्य कार्य नहीं करता है तो इस अवस्था को असक्रिय अवस्था कहा जाता है। जैसे– मनुष्य का निद्रा की अवस्था में होना। प्रकृति अपने आप प्रतिक्षण अपना कार्य करती ही रहती है। जैसे– एक शिशु पहले बाल फिर बाल से तरूण और तरूण से वृद्ध तक की यात्रा तय करता है। यह प्रकृति का स्वाभाविक गुण है। जो अपने कार्य को निरंतर कार्यरूप देने का प्रयत्न करती रहती है।

कभी–कभी मनुष्य को यह विचार भी प्रभावित कर सकता है कि, वह अपने सभी इन्द्रियों को हठपूर्वक रोककर बैठ जाए तो भी वह अक्रिय, अकर्त्तापन को प्राप्त कर लेगा और वह पूर्ण कार्यो सें मुक्त हो जायेंगा। इस विषय को भी श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट करते हुए कहा है। जो मनुष्य वाह्य स्थिति में अपने इन्द्रियों को हठपूर्वक रोककर अपने आपको अकर्त्ता मान बैठ जाता है। लेकिन मन में विषयों का चिंतन करता रहता है। वह अपने आपकों पतन मे ले जाने वाला तथा अपनी आत्मा के प्रपि हिंसा करने वाला है तथा अपनी आत्मा का हत्यारा है।

यही कर्म बंधन के कारण बनते है और यही मुक्ति के भी कारण है। जब हम कर्मो को कर्त्तापन के भाव से इच्छा और अहंकार वश करते है। तो ये कर्म हमे बंधन की तरफ ले जाते है और हमे बार–बार संसार के जीवन चक्र में अच्छे और बुरें कर्मो के फलों को भोगनें के लिए जन्म और मरण के चक्र में घूमाता रहता है। जब इन्ही कर्मों को हम अकर्त्ता भाव से तथा निष्काम भाव से करते है। तो यही हमें जन्म–मरण के बंधन से छुटकारा दिलाने वाला तथा मुक्ति प्रदान करने वाला बन जाता है।

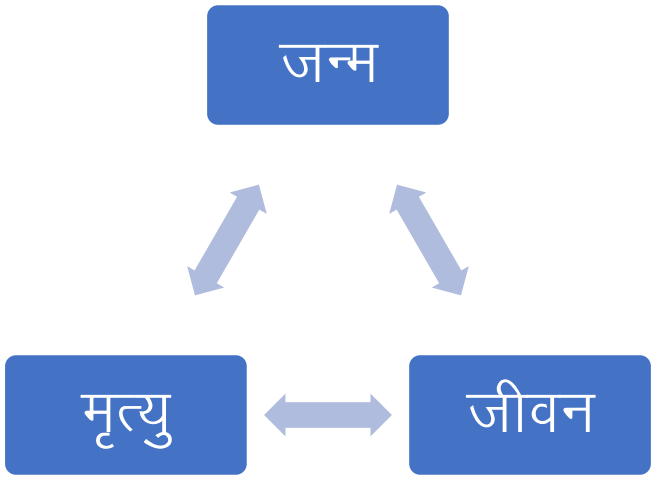

इसी जन्म, जीवन और मृत्यु के बंधन से मुक्त होना योगपथ में कैवल्य के नाम से जाना जाता है। इसी को हम बंधनो से मुक्त होना तथा इसी को हम मोक्ष के भी नाम से जानते है। इसी प्रक्रिया विशेष का चित्रण योगग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता मे स्थान–स्थान पर किया गया है। शाश्वत शांति, शाश्वत जीवन के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण निर्णय देते है कि, उस एक ईश्वर को जो आपके हृदय देश में निवास करता है। उसे पाने के लिए कर्म करें वही आपका कर्त्तव्य है, वही आपका कर्म है। उसके लिए आपको कौन सा क्रिया करनी है? तो योगेश्वर श्री कृष्ण कहते है– नियत कर्म करें। अब हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि, नियत कर्म क्या है? तो श्री कृष्ण के अनुसार, वह क्रिया जिससे आपके अन्दर दैवी सद्गुणों का विकास हो सके, एकान्त स्थान पर मन स्थिर हो सकें, श्वास एवं प्रश्वास में ओम् या दो–ढाई अक्षर का जो भी नाम ढ़ल सके उसका जाप, इन्द्रियों का दमन, मन का शमन, धारावाही शतत् चिन्तन, युक्त आहार–विहार हो सके। यह नियत कर्म है। इसी से उस हृदयस्थ परमात्मा की प्राप्ति संभव है और यही वास्तविक योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के इकसठवें श्लोक के अनुसार–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18/61)

योगेश्वर कहते है, अर्जुन वह ईश्वर संपूर्ण भूतप्राणियों के हृदय देश में निवास करता है। इतना पास है तो लोग जानते क्यो नही ? तो योगेश्वर कहते है, मायारूपी यन्त्र पर आरूढ़ होकर सब लोग भ्रमवश चक्कर लगाते ही रहते है, इसलिए नहीं जानते।

अगले ही श्लोक में योगेश्वर ने किसकी शरण में जाए, इस पर पुनः स्पष्ट निर्णय देते हुए कहा–

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18/62)

यहां योगेश्वर निर्णय देते हुए कहते है, हे भारत ! सम्पूर्ण भाव से उस ईश्वर की शरण में जाओ। उसके कृपा–प्रसाद से तू परमशान्ति, शाश्वत्धाम को प्राप्त कर लेगा।

इस प्रकार हम देखते है संपूर्ण गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण ने उस कर्म को करने पर बल दिया है जिससे उस हृदय देश में स्थित परमात्मा की प्राप्ति, उसका साक्षात्कार हो सके उससे योग जुड़ सके।

इन स्थितियों के अलावा श्री कृष्ण निर्णय देते है कि, किसी तत्त्वदर्शी महापुरूष की शरण में जाओं। इस क्रिया पर चलकर उस हृदयस्थ एक परमात्मा से योग संभव है और शाश्वत जीवन, जन्म–मृत्यु से परें जीवन प्राप्त कर कैवल्य की अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

12.3 कर्म के प्रकार–

कर्म को अच्छी तरह से समझ लेने के बाद अब हम कर्म के प्रकार का अध्ययन करेंगे। वर्तमान समय में हमें कर्म के कई प्रकार देखने और सुनने को मिलते है। आजकल हम अधिकतर सकाम कर्म और निष्काम कर्म, कर्म किये जा फल की चिंता मतकर, कर्म करने का फल अवश्य प्राप्त होगा, फल तो भगवान के हाथ में है आदि अनेक प्रकार की समाज में फैली बातों को सुनते है। हम इन पर विचार करें। तों हम देखेंगे कि ये सभी बातें हमारे ही ग्रंथो से ही निकली है। खासतौर पर श्रीमद्भगवद्गीता से इन सभी वाक्यों का सूत्रपात देखने को मिलता है और आज समाज में ये सूत्र पूरी तरह से घुल–मिल गयें है। इसी प्रकार, जब हम महर्षि पतंजलि के योगदर्शन का अध्ययन करते है। तो हमें वहां

योगदर्शन के चतुर्थपाद कैवल्यपाद में चार प्रकार के कर्मों का उल्लेख देखने को प्राप्त होता है। जो योगी को उसके ध्यान की स्थिति में चित्त के संपूर्ण विकारों के नष्ट हो जाने के बाद प्राप्त होता है। महर्षि कहते है साधना के प्रभाव से साधक का चित्त धीरे–धीरे नष्ट हो जाता है। लेकिन ध्यान में संलग्न चित्त इष्ट से जुड़ा होने के कारण नष्ट नही होता। वह अनाशयम की स्थिति वाला होता है। इस पर महर्षि ने कर्म पर प्रकाश डालने से पूर्व चित्त की स्थिति को स्पष्ट करते हुए सुत्र दिया है–

तत्र ध्यानजमनाशयम्।

(प.यो.सूत्र 4/6)

अर्थात्, उससे (इष्ट) ध्यान जनित (चित्त) अनाशयम की स्थिति वाला होता है।

इस प्रकार महर्षि ने स्पष्ट कर दिया है जब साधक का चित्त उस परमसत्ता से जुड़ जाता है। तो वह 'अनाशयम' की स्थिति वाला हो जाता है अर्थात् उसका कभी विनाश नहीं होता है।

इसके उपरांत महर्षि पतंजलि ने इस स्थिति को प्राप्त करने वाले योगी के कर्मो पर प्रकाश डालते हुए निर्णय दिया है–

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।

(प.यो.सू 4/7)

अर्थात, योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण होते है तथा अन्य सभी के कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

इस प्रकार महर्षि ने योगी के कर्म की विशेषता को बताते हुये कहा है कि, योगी के कर्म अशुक्ल तथा अकृष्ण होते है। जहां अशुक्ल कर्म से तात्पर्य शुभ कर्म तथा अकृष्ण कर्म से तात्पर्य अशुभ कर्म है। योगी के कर्म करने पर उस योगी के न शुभ संस्कार बनते है और न ही अशुभ संस्कार बनते है। वह योगी इन शुभ और अशुभ संस्कारों के परिणामों से भी परे उस परम चैतन्य के सदृश सब कुछ करता हुआ भी अकर्त्तापन के भाव लिए अकर्त्ता ही होता है। ऐसे योगियों को सबकुछ करता हुआ देख के भी हमें अकर्त्ता ही जानना समझना चाहिए।

इसी बात का निर्णय देते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहते है– जो आत्मतृप्त है, आत्मस्थित है, जो उस परमसत्ता से पूर्ण उससे एकाकार हुआ। उससे योग को प्राप्त है। उस योगी को कर्म करने से न कोई लाभ है और ना ही कर्म को छोड़ देने से कोई हानि है। क्योकि अब उस योगी को प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु अप्राप्त नहीं है।

वह संपूर्ण भाव से मुझमें स्थित हुआ मुझसे एकाकार हुआ सभी ऐश्वर्य और विभूतियों से संपन्न है। तो ऐसे योगियों को किस वस्तु का प्रयोजन शेष है? उसने योग साधना के प्रभाव से अपने सभी

विकारों को नष्टकर दिया है तथा वह योगी स्वयं में आत्मतृप्त और स्वयं में ही उस चैतन्य परमपिता परमेश्वर के सदृश अवस्था वाला हो जाता हैं।

योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं को अकर्त्ता के रूप में कहा है। तो वे योगेश्वर अकर्त्ता कैसे है?

तो श्री कृष्ण स्वयं मार्ग निर्देशन करते हुए कहते है–

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 4/14)

.योगेश्वर श्री कृष्ण कहते है, ना ही कर्म मुझे लिपायमान करते है और ना ही कर्मों के फल में मेरी स्पृहा है और इस स्तर से जो अन्य भी मुझे जानते है उन्हे भी कर्म नहीं बाँधते है।

इसी बात को महर्षि भी कहते है कि, योगी के कर्म अशुक्ल तथा अकृष्ण होते है। योगपथ में साधक को वृत्तियों का ही संयम प्राप्त करना होता है जो इस संयम को प्राप्त कर लेता है। वह उस योग को प्राप्त कर लेता है। इसी योगपथ का चित्रण करते हुए बाबा कबीर ने भी कहा है–

'आँख न मूदूँ कान न रूँघू, काया कष्ट न धारों।

उघरे नयना साहब देखूँ, सुन्दर रूप निहारों।

सन्तो! सहज समाधि भली।'

इसके उपरान्त महर्षि ने अन्य लोगो के कर्मो का विवरण देते हुए कहा है कि– योगी के अतिरिक्त अन्य सभी लोगों के कर्म तीन प्रकार के होते है। इसके लिए महर्षि ने सूत्र प्रदान करते हुए कहा है–

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्।

(प.यो.सूत्र 4/8)

अर्थात्, तीन प्रकार के कर्मों के फलभोगों से अनुकूल वासनाओं की ही प्रकटीकरण होता है। जिस समय जिन वासनाओं को प्रकट होने का अवसर प्राप्त होता है वे ही प्रकट हो जाते है और अन्य वासनायें संचित अवस्था में रहती है।

इस प्रकार योगी के अतिरिक्त अन्य सभी के कर्मों का फल तीन प्रकार का होता है– जिसे हम सात्विक, राजस और तामस के नाम से जानते है। यही शुक्ल, कृष्ण और मिश्रित फल कहलाते है। योगी के अतिरिक्त अन्य सभी को इन फलों को भोगना ही पड़ता है।

इसी को योगेश्वर ने भी कहते हुए निर्णय प्रदान किया है कि सकामी पुरूषो के कर्म तीन प्रकार के होते है –

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।

भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18/12)

सकामी पुरूषों के कर्मों का अच्छा, बुरा और मिला। इस तरह तीन प्रकार के फल मरने के पश्चात् भी प्राप्त होता है, तथा जन्म–जन्मान्तरों तक मिलता ही रहता है। किन्तु सन्यासिनां, अर्थात् सर्वस्व का न्यास करनेवाले पूर्ण त्यागी पुरूषों के लिए कर्मों का फल किसी भी काल में नहीं प्राप्त होता है।

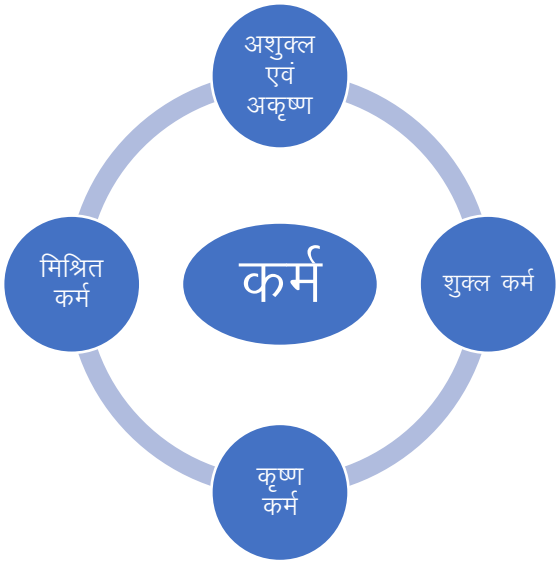

12.4 कर्मफल सिद्धान्त–

कर्मफल का सिद्धान्त शाश्वत है, अर्थात् सदैव रहने वाला है कभी न बदलने वाला है। जिसके अनुसार सभी प्रकार के कर्मों का फल अवश्य ही उसके कर्त्ता को मिलता ही है। अब कर्त्ता चाहे अच्छे कर्म करे या बुरे कर्म करे या फिर वह मिश्रित कर्म करें। उस कर्त्ता को उसके सभी कर्मो का फल अवश्य ही प्राप्त होगा। इस प्रकार कर्मो के अनुसार ही सुख एवं दुख का निर्धारण स्वतः अपने आप होता रहता है तथा वह परमसत्ता तटस्थ भाव होकर केवल द्रष्टा के रूप में तथा साक्षी के रूप में रहता है। मनुष्य के कर्मफल में उसका कोई हस्तपक्षेप नहीं रहता है। इसी कारण ईश्वर को द्रष्टा, सर्वज्ञ,

निर्विकार, निर्लेप तथा साक्षी के रूप में मान्यता प्राप्त है। हमारे सभी प्राचीन दर्शन एवं ग्रंथ इसको मान्यता प्रदान करते है।

इस प्रकार मनुष्य के सभी सुख–दुख, लाभ–हानि, यश और अपयश का कारण स्वयं उसके द्वारा किये गये कर्म ही है। इस प्रकार कर्म के आधार पर ही कर्म के फलो के परिणाम प्राप्त होते है। कभी ये परिणाम सकारात्मक तो कभी नकारात्मक होते है। व्यक्ति के सभी कार्यों, कर्मों, विचारों का उसके जीवन पर प्रभाव पड़ता ही है। अच्छे कर्म सकारात्मक तथा बुरे कर्म नकारात्मक परिणाम प्रदान करने वाले होते है।

कर्म करते समय कर्म के पीछे लिया गया भाव ही कर्मफल का मुख्य कारण बन जाता है। इसे न्यूटन के तृतीय नियम की तरह देखा जा सकता है कि, हर क्रिया के पीछे प्रतिक्रिया अवश्य होती है। इसी से संबंधित एक पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है, जैसा बोयेंगे, वैसा ही काटेंगे।

इसी कर्मफल के सिद्धान्त पर ब्रह्मवैवर्तपुराण में उल्लेख प्राप्त होता है–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतम् कर्म शुभाशुभम्।

न भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण 1/44/74)

अर्थात्, जो कुछ भी अच्छा या बुरा कार्य किया जाता है। उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। अनन्त काल बीत जाने पर भी कर्म, फल को प्रदान किए बिना नाश को प्राप्त नहीं होता।

यदि हम कर्मों के फलो के आधार पर कर्म का विश्लेषण करे। तो सामान्यतः तीन प्रकार के कर्म हमें प्राप्त होते है। जिन्हे हम संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा क्रियमाण या संचीयमान कर्म के नाम से जानते है। ये कर्म हमारे द्वारा किये गये कर्मो के ही आधार पर विभाजित है। इसलिए ये कर्मफल के सिद्धान्त के आधार ही कार्य करते है। हम इन्हे कर्मफल के सिद्धान्त के पूरक के रूप मे भी कह सकते है। संचित कर्म में वे सभी कर्म आते है। जो हमारे पूर्व जन्म से संबंधित होते है। पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का फल जब इस जन्म में प्राप्त होता है। तो उसे प्रारब्ध कर्म कहते है।

क्रियमाण या संचीयमान कर्म उन कर्मों को कहते है। जो कर्म वर्तमान जीवन में किया जाता है। इस प्रकार कर्मफल के सिद्धान्त का वर्णन हमें वेदो में, उपनिषदों में, गीता में, पुराणों आदि ग्रंथो में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक रूप से भी किये गये कर्मों के फल मिलते है। इन्ही कर्मों के प्रभाव के कारण संसार में जीवन चक्र चलायमान है।

इस प्रकार संसार की पूरी संरचना इसी कर्मफल के सिद्धान्त पर कार्य करती है। इसी पर टिकी हुई है। सभी को अपने किये गये कर्मों के फल भोगना ही पड़ता है। इसी सिद्धान्त पर यह संसार कार्य करता है। संसार में सभी एक–दूसरे के बदले ही निभा रहें है।

12.5 सारांश–

संपूर्ण संसार कर्मों के ही आधार पर कार्य करता है। योग पथ में लगा हुआ योगी भी योग पथ में जो भी साधना करता है। वह भी उसका कर्म ही है। उसी कर्म के आधार पर वह साधना में लगा हुआ योगी योग को प्राप्त करता है तथा उस परम तत्त्व के साथ एकाकार होकर उसी के समान स्थिति को प्राप्त करता है। वास्तव में योग साधना के पूर्ति काल में योगी स्वयं में उन्ही विभूतियों, ऐश्वर्य और क्षमताओं वाला हो जाता है। जो उस परम चैतन्य में स्थित सत्ता का है।

इसी प्रकार हम देखते है, योगी के कर्म अशुक्ल तथा अकृष्ण होता है तथा अन्य सभी के कर्म तीन प्रकार के होते है। इस प्रकार पतंजलि योगसूत्र में हमें चार प्रकार के कर्म प्राप्त होते है। इसी प्रकार तीन प्रकार के कर्म हमें श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। जिन्हे हम सात्विक कर्म, राजस कर्म तथा तामस कर्म के नाम से जानते है। गीता के अनुसार भी जो परम चैतन्य है वह सबकुछ करता हुआ भी अकर्त्ता है। उसे कर्म लिपायमान नहीं करते है। वह सभी कर्मों के फलों में आसक्ति रहित होकर सिर्फ साक्षी के रूप में तटस्थ रहता है।

इसी प्रकार यह संसार कर्मो और उसके फलों पर कार्य करता है। सभी प्रकार के किये कर्मों का फल उसके कर्त्ता को अवश्य ही भोगना पड़ता है। कर्म के फलों के आधार पर भी संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा संचीयमान कर्म होते है। साथ ही साथ हमने देखा शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक कर्म भी कर्मों के फलों का निर्धारण करते है।

12.6 शब्दावली–

तत्वदर्शी	–	सत्य को जानने वाला
अव्यक्त	–	जिसे बताया न जा सकें
अकर्त्ता	–	जो कर्म न करता हो
प्रारब्ध कर्म	–	पूर्व जन्म में किये गये कर्म

संचित कर्म – वे कर्म जो एकत्रित हो रहे है

योगेश्वर – जो स्वयं में योगी हो तथा दूसरों में भी योग जाग्रत कर सके।

चित्त – मन का पर्यायवाची

सूत्र – संक्षिप्त शब्दों में किसी विषय को व्यक्त कर देना

12.7 संदर्भ ग्रंथ–

योगदर्शन प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या – स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज

शंका – समाधान – स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज

यर्थाथ गीता – स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज

योग सूत्र – वाचस्पति मिश्र

पतंजलि योग प्रदीप – ओमानंद तीर्थ

12.8 अभ्यास प्रश्न–

12.8.1 निबंधात्मक प्रश्न–

1. कर्म किसे कहते है। विभिन्न ग्रंथो के अनुसार कर्मों की व्याख्या करे।
2. कर्मों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करे।
3. पतंजलियोग सूत्र में कर्म के कितने प्रकार बताये गये है। समीक्षात्मक परिचय प्रदान करें।
4. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्म की विवेचना करें।
5. पतंजलियोग सूत्र के अनुसार योगी के कर्म की समीक्षा करें।

12.8.2 लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. पतंजलि योगसूत्र के अनुसार कर्म के कितने प्रकार है।
2. अशुक्ल कर्म किसे कहते है।
3. अकृष्ण कर्म से आप क्या समझते है।
4. मिश्रित कर्म से आपका क्या तात्पर्य है।
5. संचित कर्म क्या है।
6. तामस कर्म किसे कहते है।
7. अकर्त्ता किसे कहा जाता है।
8. राजस कर्म किसे कहते है।
9. मानसिक कर्म किसे कहते है।
10. वाचिक कर्म से आप क्या समझतें है।